ISSN 2581 9917

संवेदना

Bilingual E-Magazine 2021

Volume - III | Issue-1

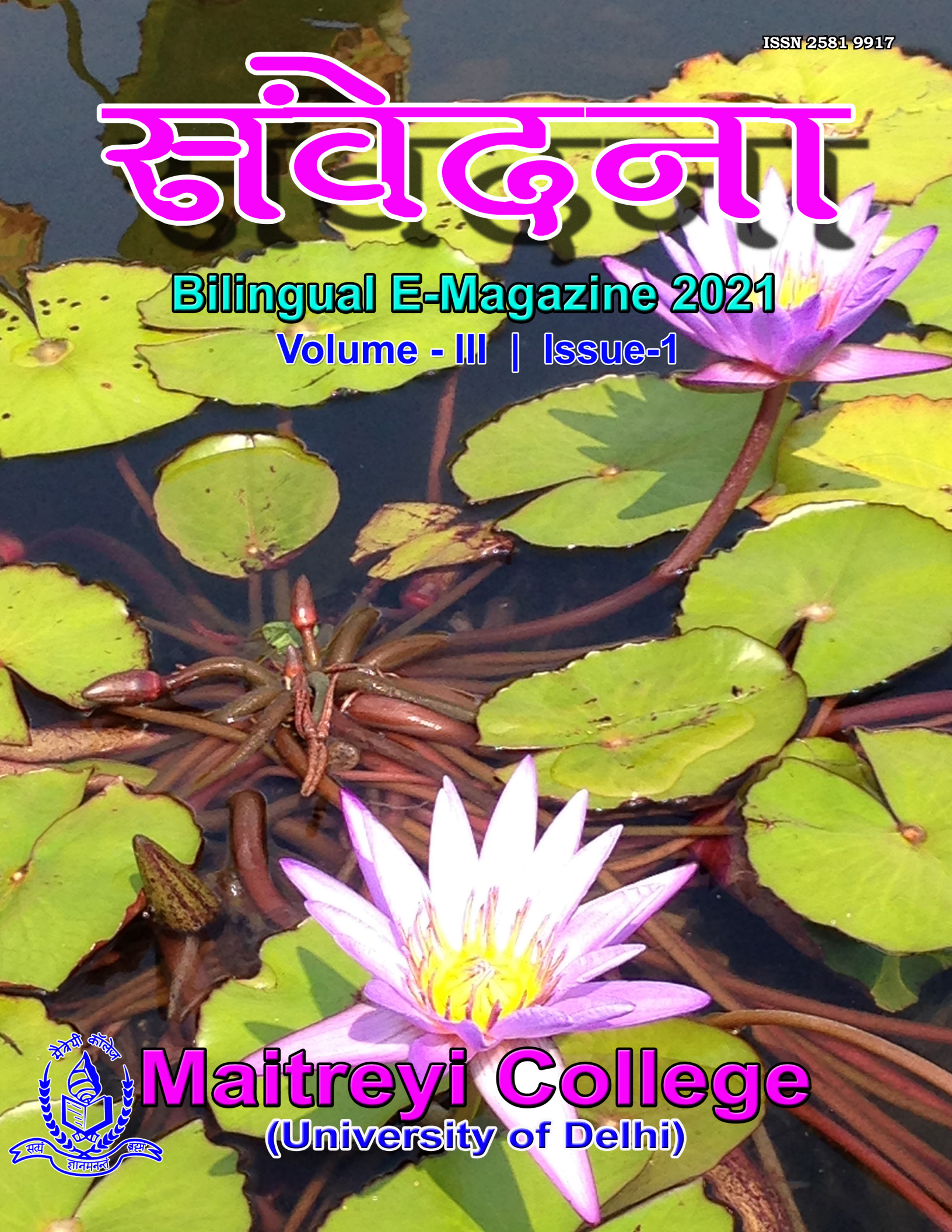

Maitreyi College

(University of Delhi)

ISSN 2581-9917

संवेदना

Peer Reviewed E-Magazine 2021
Volume - III | Issue - 1

by

Internal Complaints Committee
Maitreyi College

Editor in Chief

Dr. Haritma Chopra
Officiating Principal
Maitreyi College,
(University of Delhi)
hchopra@maitreyi.du.ac.in

Deputy Editor in Chief

Dr. Prachi Bagla
Associate Professor
Department of Commerce,
Maitreyi College (University of Delhi)
pbagla@maitreyi.du.ac.in

Editors

Dr. Pramod Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sanskrit,
Maitreyi College (Univ. of Delhi)
pramodsingh@maitreyi.du.ac.in

Dr. Pooja Gupta
Assistant Professor
Ramjas College
University of Delhi
poojagupta@ramjas.du.ac.in

Dr. Jagmohan Rai
Associate Professor
Department of Mathematics,
PGDAV (Ev.) College (Univ. of Delhi)
jagmohan@pgdave.du.ac.in

Ms. Apurva Setia
Assistant Professor
Department of Commerce,
Maitreyi College (Univ. of Delhi)
asetia@maitreyi.du.ac.in

ISSN 2581-9917

ADVISORS

Prof. Anil Aneja
Department of English
University of Delhi

Dr. Charu Jain
Associate Fellow
National Council of Applied Economic Research

Prof. Nita Mathur
Professor of Sociology
School of Social Sciences, IGNOU

Dr. Praveer Jain, MD, FACC, FHRS
Clinical Cardiac Electophysiology
USA

Col. Praveen Shankar Tripathi
ASC, Indian Army

Dr. Renu Malaviya
Associate Professor
Department of Education (University of Delhi)

Ms. Shilpa Joshi
Vice President
Indian Dietetic Association

Dr. S.S. Awasthy
Secretary General
Authors Guild of India

 ISSN 2581-9917

WITH SUPPORT FROM

News Analyst

Prarthana Judith Herald

Sketches

Simran Tyagi
BA (Prog.), 3rd Year
NCWEB, Maitreyi College Centre

Covers & Pictures

Dr. Prasoon Jain
West Virginia, USA

Computer

Mr. Abhishek Khurana
Senior Technical Assistant
Deptt. of Computer Science
Maitreyi College, University of Delhi

Secretarial Support

Mr. Sanjay Ahuja
Maitreyi College, University of Delhi

FROM THE EDITOR'S DESK

We are happy to present the second anniversary issue of our bilingual half yearly magazine *संवेदना* to our readers. At the outset, we thank all the authors who have contributed to this issue despite being surrounded by an environment of hopelessness, despair and disappointment due to COVID 19. None of us has ever witnessed such struggle for survival. Covid-19 is at the back of everyone's mind. Yet, we are resilient and we all are hard at work with a hope that everything will be fine one day. Our authors have defied this onslaught and have given their precious time to allow us to bring this issue for our readers that covers a wide variety of subjects.

As in the earlier issues this issue also has an English and Hindi section, news analysis and sketches based on the previous issue. We continue to make the magazine more colourful and have added some additional sketches and pictures to make the presentation more attractive.

***संवेदना* covers a variety of social issues. We not only address important contemporary issues but also strive to bring out characters from the folds of history to enlighten our readers on our glorious heritage. All articles are written in simple language which one can read without picking up the dictionary. In other words, there is no target audience for us- anyone who picks up the magazine can read it with interest page one through the end.**

Here is now a brief overview of English section of the current issue:

The article on '*Phool Walon Ki Sair*' talks about the week-long celebration by the florists from different religious backgrounds. This article highlights its interesting historical background dating in the Mughal period in the early century and its significance in terms of the communal harmony in the contemporary India.

***'Checks and Balances'* addresses the need for the working couples to balance their roles remembering the fall outs of making their jobs their priority. On a similar theme, Dilemmas and Challenges of a Working Woman reminds the society the pulls and pressures on a working woman and to acknowledge and be considerate.**

***'Me, Myself and I'* highlights the self-centric attitude becoming a norm amongst the young adults in the competitive world of today whereby everything a person does is for personal gains. As editors we do not pass any judgements, the solution offered by the author is to practice our well-founded ideologies and to become role models for this generation.**

***'Do You Know Real You'* reveals how significant it is to be familiar with your own self and to have the appropriate balance of psyche and sentiments, thereby unveiling the concept of introspection. At the end of the day, you can misrepresent yourself to someone else but you cannot escape from knowing who you truly are.**

The article on domesticated animals and pets discusses some interesting role pets play in human society and discusses many aspects of their general care, nutrition, health care, preventive care, insurance and laws and regulations on pets in the US and in India.

The research paper on obstetric violence, a study based on primary data concludes that women face a variety of mental and physical abuses during childbirth irrespective of their financial status.

The article on *Rudrama Devi*, a ruler for almost four decades of Kakatiya Dynasty of Andhra which is present day Telangana region, a great warrior and administrator, makes an interesting read from history.

In her article, the author has made a case for paternity leave as a step towards gender equality, discusses attitudes of young fathers, and provisions for paternity leave in different countries.

संवेदना के हिन्दी भाग में सन्निहित लेखों में पहला लेख 'स्पर्श : जीवन से मुक्त होने की तरफ ले जाती उम्र की एक अवस्था' है। इसमें उम्र के विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए वृद्धावस्था तक पहुँचना एवं इस अवस्था में परिजनों के व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को बड़ी ही मार्मिकता से उपस्थापित किया गया है। लेखिका ने इस लेख के माध्यम से यह बताने का स्तुत्यपूर्ण प्रयास किया है कि शैशव, किशोर, युवा एवं वृद्धावस्था यह शरीर के सामान्य धर्म हैं। इसके कारण आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र में कमी नहीं आनी चाहिए। वस्तुतः वृद्धावस्था में परिवार की ज्यादा जरूरत होती है। अतः सभी का उत्तरदायित्व बनता है कि हम अपने बड़े-बुजुर्गों का यथोचित मान-सम्मान करें एवं उनके अपार ज्ञान का दोहन करें।

'तोल मोल के बोल' लेख में प्रासंगिक उद्धरणों के द्वारा यह सुस्पष्ट किया गया है कि 'बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय'। लेख में अभिव्यक्त एक अतीव सुन्दर उक्ति है, 'जीवन सौन्दर्य है, जिसका शृंगार शब्द है'। इसके द्वारा यह सन्देश दिया गया है कि बोलने से पहले जो कुछ बोल रहे हैं, उसका भली-भाँति चिन्तन-मनन कर लें। तत्पश्चात् ही अपने विचारों को रखें। ऐसा करने वाले जन अनुकरणीय होते हैं, जबकि जो बिना सोचे-समझे कुछ भी बोल देते हैं, उनकी बातों की कोई भी परवाह नहीं करता है।

जीवन संघर्ष का ही अपरनाम है। कभी-कभी स्थितियाँ अनुकूल नहीं होती हैं। जीवन में कई बार असफलता भी प्राप्त होती है। किन्तु यह असफलता ही एक दिन बड़ी सफलता का आधार बनती है। अतएव मनुष्य को परिस्थितिजन्य असफलताओं से विचलित होकर निराशा एवं हताशा में डूबना नहीं चाहिए, अपितु पुनः और अधिक उत्साह से परिश्रम करके सफलता को अंगीकार करने हेतु उद्यत होना चाहिए। यही वह मुख्य बात है, जिसे 'संघर्ष जीवन का हिस्सा है' में बड़े ही संक्षिप्त किन्तु गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया गया है। लेखिका की यह पंक्ति अत्यन्त प्रेरणास्पद है कि 'कोई भी मंजिल मनुष्य के जीवन के संघर्षों का ही हिस्सा होती है, वो उसकी पूरी जिन्दगी नहीं होती'।

'कोरोना काल के संकट की चुनौतियाँ और सीख' के लेखक ने कोरोना काल की समस्याओं, जटिलताओं एवं आने वाले समय में इससे उत्पन्न कठिन परिस्थियों की ओर सबका ध्यानाकर्षित किया है। निःसन्देह मनुष्य को हमेशा मानवता के साथ खड़ा होना चाहिए। प्राकृतिक आपदाओं से जन्य कठिन समय की चुनौतियों से अवश्य ही पार पाया जा सकता है, किन्तु इसके लिए हमें सभी भेद-भावों को मिटाकर परस्पर एकजुट होकर इन चुनौतियों का सामना करना चाहिए।

युवा शक्ति का सम्यक् सदुपयोग समाज एवं देश को एक महत्त्वपूर्ण आयाम दे सकता है। इसके लिए उसके विभिन्न गुणों एवं शक्तियों का समुचित सन्निवेश परमावश्यक है। एतदर्थ युवाओं को जागरूक करना जरूरी है। युवा-जागरूकता को प्रोत्साहित करने वाले विभिन्न उपागमों की चर्चा की गई है - 'युवाओं में श्रद्धा, विश्वास और जागरूकता' नामक लेख में। युवाओं में अपार शक्तियाँ निहित हैं, यह बात लेखिका ने सहर्ष स्वीकार करते हुए यह बताने की चेष्टा की है कि इस पर यथोचित नियन्त्रण एवं इसका समुचित सदुपयोग भी जरूरी है।

'जैनेन्द्र और सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में स्त्री-विमर्श' लेख में स्त्री-विमर्श-सम्बन्धी जैनेन्द्र एवं सुभद्रा कुमारी के दृष्टिकोण को रखा गया है। प्रस्तुत लेख में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि दोनों ही पुरोधा लेखकों की रचनाओं में स्त्री पात्र को प्रमुख स्थान दिया गया है। स्त्री की दशा को दिखाकर समाज को उनके प्रति जागरूक किया गया है। किन्तु जैनेन्द्र की रचनाओं में स्त्री-विमर्श जहाँ सहानुभूति की दृष्टि से उपस्थापित है, तो वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान का स्त्री-विमर्श स्वानुभूति का विषय है। जैनेन्द्र की स्त्री पात्र प्रतिकार न करते हुए केवल सम्पूर्ण समर्पण के सिद्धान्त का ही सम्मान करती है, जबकि सुभद्रा कुमारी चौहान विवेचित स्त्री पात्र समर्पण करते हुए भी आवश्यकतानुसार प्रतिशोध भी करती है। जैनेन्द्र जहाँ स्त्री-मुक्ति एवं उनके उत्थान हेतु गांधीवादी समाधान ही प्रस्तुत करते हैं, वहीं सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं पर गांधी का प्रभाव होते हुए भी आवश्यकता पड़ने पर यथोचित प्रतिकार के सिद्धान्त को भी अंगीकार किया गया है। स्त्रीविमर्श एवं स्त्री-मुक्ति सम्बन्धी उक्तद्वय लेखकों के नजरिए का तुलनात्मक विवेचन ही प्रस्तुत लेख का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

'भारतीय समाज के आइने में बदलती नारी की छवि' लेख में वैदिक काल से लेकर अद्यावधिपर्यन्त समाज में स्त्रियों को लेकर आए दृष्टिकोण को उपस्थापित किया गया है। लेख में इस तथ्य को प्रमुखता से रेखांकित किया गया है कि वैदिक काल से लेकर रामायण, महाभारत अर्थात् महाकाव्य काल तक स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ रही, किन्तु कालान्तर में पुरुष प्रधान समाज ने स्त्रियों को चूल्हा-चौका एवं घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया। उनकी स्वतन्त्रता एवं स्वायत्तता समाप्त सी हो गई। किन्तु आधुनिक काल की नारी ने न केवल अपने अस्तित्व हेतु आवाज बुलन्द की, अपितु यह सिद्ध भी किया कि वह समाज के लिए पुरुषों की तरह ही अतीव उपयोगी है। वे भी राष्ट्र की तरक्की में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती हैं। लेख में एक पंक्ति मिलती है - ''आधुनिक नारी प्राचीन अंधविश्वासों की बेड़ियों से मुक्त हो गई है। वह भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को अधिक महत्व देती है''। यह पंक्ति वस्तुतः स्त्री-स्वावलम्बन की स्वीकारोक्ति है। लेखिका का यह मानना भी अतीव प्रशंसनीय है कि 'आधुनिकता की आड़ में कुछ नारियाँ स्वतंत्रता और स्वावलंबन के साथ-साथ अभिमान को अपना लेती हैं और नारीत्व को लज्जित कर बैठती हैं'। अतः स्वतन्त्रता एवं स्वावलम्बन में उच्छृंखलता के लिए स्थान नहीं होना चाहिए।

'बालिका शिक्षा : चिंतन अनुचिंतन' लेख में स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित किया गया है। स्त्री ही परिवार का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार होती है। एक शिक्षित स्त्री अवश्य ही एक सुसभ्य एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण करते हुए एक समृद्ध राष्ट्र-निर्माण में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत लेख में लेखिका ने स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी प्रमुख विचारकों के मत को रखकर स्त्री-शिक्षा के विभिन्न आयामों पर बड़ी ही सरलता एवं सहजता के साथ विचार किया है।

We hope that our readers will enjoy reading the thought provoking articles in this issue. Any comments or feedback from readers are always welcome.

Editors - Samvedana

ISSN 2581-9917

Feedback on June 2020 Issue

'संवेदना' ई-पत्रिका का द्वितीय अंक आद्योपान्त पढ़ा।

विषय के अनुरूप 'संवेदना' ने महिलाओं की स्थिति के अनेक आयामों का व्यापक आकलन प्रस्तुत किया है एवं अर्थ के अनुरूप संवेदनशील बिंदुओं, प्रश्नों और उनके समाधान की ओर इंगित भी किया है।

'**Self-Respect**' में डॉ.प्राची बागला ने बाबा का शब्दचित्र उकेरते हुए उनके संघर्ष, विश्वास, साहस, स्वाभिमान, सकारात्मकता को नमन करते हुए एक बहुत संवेदनशील और संभवतः बहुत उचित प्रश्न भी उठाया है...इस प्रकार के व्यवहार के प्रति उनकी (दिवंगत) पत्नी क्या कदम उठातीं?

उत्तर अनेक हो सकते हैं लेकिन अपने अनुभव से एक बात तो मैं कह सकता हूँ कि भारतीय नारी अपना अपमान भले ही सह ले, अपने पति का अपमान सहन नहीं करती। वह अपने प्रति किए गए अपराध को क्षमा कर सकती है,पर पति के सम्मान के प्रति बहुत सजग होती है। निश्चय ही वह भी बाबा के साथ घर से निकल ही नहीं आती, अपितु घर छोड़ देने की पहल, निर्णय वह ही करती। भारतीय नारी का मन ऐसा ही है। क्यों? नहीं जानता।

The Faminine Nature... भारतीय चिंतन परंपरा के एक विशेष आयाम पर विचार करता शोध लेख है। रित शब्द आज प्रयोग में लगभग नहीं रह गया। विश्व-व्यवस्था के नियमों की आख्या इस शब्द के माध्यम से पूर्व मनीषियों ने की है। प्रकृति अपने विभिन्न रूपों, आयामों, उपादानों और प्रतीकों सहित इसमें समाहित है।

आगे के दोनों लेख अपने अपने विषय के साथ न्याय करते हैं। आज के ज्वलंत विषयों को विचार के केन्द्र में रखकर अत्यंत परिश्रमपूर्वक सामग्री का संकलन करते हुए वर्गीकरण, विश्लेषण, विवेचन इनकी विशेषता है।

The Resilient Begum... इतिहास के पन्नों पर एक दृष्टि है तो **Corporate Social Responsibility...**, **Women Empowerment...** एवं **Assessment of Rights** अपने शीर्षकों के अनुरूप विभिन्न दृष्टियों से महिला सशक्तिकरण संबंधी पर्याप्त जानकारी देने वाले लेख हैं। एक अच्छी कविता भी इसमें है।

पत्रिका का हिंदी विभाग भी उतना ही संवलित है। 'स्त्री पुरुष विमर्श' आज के सर्वाधिक प्रचलित विमर्शों में से है। 'बलिया पट्टी की कथा' बिहार के ग्रामीण जीवन का दिग्दर्शन है। 'बालादेवी' महिला फुटबॉलर के विषय में है। भारतीय महिलाएँ जीवन के उन क्षेत्रों में भी बहुत आगे बढ़ी हैं, जो अभी कुछ समय पूर्व तक उनके लिए निषिद्ध माने जाते रहे।

'जल थल मल' पुस्तक की समीक्षा में ''दिल्ली के पानीदार इतिहास'' के बहाने आज की बड़ी समस्याओं पर विचार इसकी विशेषता है ग्रतीन अच्छी कविताएँ इसके साहित्य - पक्ष की पूर्ति करती हैं।

समाचार विचार पत्रिका को पूर्णता प्रदान करता है तो **Sketches** गत अंक का स्मरण है।

संपादक महोदया की उन्नत कल्पनाशीलता इस पत्रिका के रूप में हमारे सामने है, यह लिखने में मुझे रत्ती भर भी संकोच नहीं है। इस पत्रिका के पहले अंक ने ही मुझे ई-पत्रिकाओं का पाठक बनाया है। पत्रिका की सज्जा सुंदर सुरुचिपूर्ण है।

पत्रिका की संपादिका, उनके सभी सहयोगियों को साधुवाद। ईश्वर उन्हें यशस्वी बनाएँ, ऐसी कामना...

डॉ. ललित गोस्वामी
एसोसिएट प्रोफेसर (सेवानिवृत)
पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज, नई दिल्ली।

Nice collection of articles .

The article titled Self Respect very well set the ball rolling by the story of this braveheart.

I strongly feel that India needs an effective social security net for the elderly. I also feel that one should do one's best in educating and settling the children. And expect nothing in return.

Dr. Umesh Bareja
Consultant & Surgeon
Sita Ram Bharatia Hospital

CONTENTS

Sr. No.	Title	Author(s)	Page No.
English Section			
1.	The Hidden Gem of Communal Spirit : Phool Walon Ki Sair	Shiza Parveen	11
2.	Checks and Balances	Dr. Prachi Bagla	17
3.	Dilemmas and Challenges of A Working Woman	Dr. Pooja Gupta	18
4.	Do You Know the "Real" You?	Simran Tyagi	21
5.	"Me, Myself and....I"	Dr. Rita Nagpal	23
6.	Paternity Leave : A Step Forward Towards Gender Equality	Apurva Setia	26
7.	Pet Care in US and India	Roop Dhillon Prachi Bagla	29
8.	Rudrama Devi : The Warrior Queen	Aradhana Singh	35
9.	Evidence of Obstetric Violence amongst the Indian Middle-Class Women	Tanya Singh	40
हिन्दी भाग			
10.	स्पर्श : जीवन से मुक्त होने की तरफ ले जाती उम्र की एक अवस्था	ज्योति	52
11.	तोल-मोल के बोल	चंदा यादव	55
12.	संघर्ष जीवन का हिस्सा है	ममता कुमारी	57
13.	कोरोना काल के संकट की चुनौतियाँ और सीख	डॉ. तरुण गुप्ता	58
14.	युवाओं में श्रद्धा, विश्वास और जागरूकता	पूनम तंवर	60
15.	जैनेन्द्र और सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में स्त्री-विमर्श	शीतल कुमारी	62
16.	भारतीय समाज के आइने में बदलती नारी की छवि	डॉ. पूजा गुप्ता	65
17.	बालिका शिक्षा : चिंतन अनुचिंतन	सुश्री रेखा चुड़ासमा	68
News Analysis			72
Sketches			
i.	The Feminine 'Nature' in the Indian Texts and Tradition		74
ii.	रोपण		75

ENGLISH SECTION

THE HIDDEN GEM OF COMMUNAL SPIRIT : PHOOL WALON KI SAIR

Shiza Parveen*

INTRODUCTION

India, with a population of more than 135.26 crore, is a secular country where people of different cultures co-exist. There is no state sponsored or national religion thus making it a home for everyone with different religious affiliations to come together and live with one another. People are free to practice any or no religion as per their beliefs as the Article 25-28 of the Indian Constitution extends the right to freedom of religion in India. Diverse communities embracing and respecting each other's culture is also something one can find in this country. From Hindus, Muslims, Sikhs to Christians, everyone living together and celebrating each other's festivities shows the communal spirit of India in its purest form. Communal Harmony is a situation where people from different religious backgrounds live together in peace and respecting each other's cultures, free from hatred or any kind of violence. There is affection and love among the citizens. It strongly promotes non-violence and peace towards each other and nation at large. Sadhbhavana Diwas (Communal Harmony Day) celebrated on 20th August every year in India is based on the idea to promote equality, along with acceptance of different religions by all because each citizen of the nation has the right to follow the religion they believe in and intolerance threatens this right. But despite being a secular nation, India still faces problems of communal disharmony leading to communal riots in our country. Despite communal riots, there is still a presence of communal harmony present in the DNA of India. Different communities come together to celebrate festivals in different parts of India to restore and promote the nature of communal harmony. Some of these are Phool Walon ki Sair, Sarva Dharma Sammelan, Ganga-Jamuni Tehzeeb and a few others that keep the communal spirit alive.

PHOOL WALON KI SAIR

Phool Walon ki Sair, translated as 'procession of the florists', is a one-of-a-kind annual celebration conducted and participated by the Delhi florists. It is a weeklong celebration, held during the month of September, usually after the monsoon season of Delhi. The philosophy of 'Unity in Diversity' fits perfectly well with this festival as florists from different religious backgrounds come together to celebrate with great zest and zeal.

* *Assurance Associate, Earnest & Young*

By Simran Tyagi

An annual celebration to pray for a better flower season next year, this is a famous festival many Delhi natives might have heard of yet might be unknown to so many. Rightly labeled it is a hidden gem portraying communal harmony right in the heart of the capital of this country.

ORIGIN

The history behind this festival travels back to the Mughal Era times during the year 1812 because of an incident that took place at the Red Fort. Akbar Shah II, the Mughal King wanted to nominate his younger (and favourite) son Mirza Jahangir in place of his eldest son Siraj Uddin Zafar (Bahadur Shah Zafar II) as his heir but couldn't because Siraj Uddin being the elder son was next in line for the throne. One fine day when Sir Archibald Seton, the British Resident at the Red Fort, went to meet the Mughal King the topic of succession was being discussed. The Resident stated that the East India Company stance was in favour of Bahadur Shah Zafar II to be the successor. After listening to this, Mirza Jahangir, who was in his late teens, insulted the British Resident in open court by calling him 'Loolu', Seton didn't react as he was unaware as to what is the meaning of Loolu. Few days after that, Mirza Jahangir was on the roof of Naubat Khana at the Red Fort and Sir Archibald Seton was returning from the Darbar, when suddenly Mirza Jahangir fired a shot from the roof. Sir Archibal Seton however escaped from that shot but his orderly was killed by this act. The Resident asked the prince to apologize but he refused. For this very reason, The Resident came back to avenge the insult with a whole posse of British troops and Mirza Jahangir was exiled to Allahabad by the orders of the British Resident in the year 1812. Mirza Jahangir's mother Queen Mumtaz Mahal Begum II who was heartbroken and sad with this decision, took a vow that day that whenever her son would be released, from

Allahabad, she would walk from Nizamuddin Auliya Tomb to Qutubuddin Bhaktiyar Kaki and offer a 'chaadar' (sacred cloth) at the Khwaja Bakhtiar Kaki dargah situated in Mehrauli.

Mirza Jahangir was released from Allahabad after a few years and some deliberations was sent back to Delhi. Like a devout mother and person, Queen Mumtaz Mahal Begum II redeemed her vow and went to Mehrauli where grand celebrations were organized. The Queen with the chaadar started her walk barefoot which the people did not have a heart to see and spread rose petals along the way. Along with that, the Imperial Court also shifted to Mehrauli and the Delhi population too followed her. The celebrations continued for straight 7 days turning it into a fair which included all kinds of attractions like jhoolas on the mango trees, cock fighting, bull baiting, kites flying, swimming bouts and wrestling making it a festival in itself on the occasion of the return of the prince. She then offered a chaadar made up of flowers at the Khawaja Bhaktiar Kaki Dargah. Seeing this, the Mughal King, who was of a secular mindset also gave orders for floral offerings in the shape of a floral pankha to be offered at the Yogmaya Temple in Mehrauli because Mehrauli is known for its deity. This was how the very first Phool Walon ki Sair originated and celebrated. Seeing how this event was celebrated with great enthusiasm and the lively spirit of people, it was then decided to declare this event as an annual festival to be celebrated after the monsoon rains, allowing people from each and every community to be a part of it.

HISTORY

Since its origin in the year 1812 with the Mughal Emperor as its patron when it was celebrated for 7 days leading to a shift of the Darbar to Mehrauli, this was celebrated every year with the same enthusiasm. Every year the Mughal Emperor of the time became its patron and people from all religious backgrounds became a part of it. The last 'Phool Walon ki Sair' under the rule of Mughals was celebrated in the year 1857, during the reign of Bahadur Shah Zafar II (Siraj Uddin Zafar, the eldest son of Akbar Shah II). The tradition didn't stop after the Mughals, the festival was still celebrated after the 1857 revolt, by the British Deputy commissioner as its patron, who was the highest government functionary at that time in Delhi, along with the help of some other prominent citizens.

The festival was brought to a stop in the year 1942 by the British during the Quit India Movement phase of the freedom struggle in pursuance of their policy of 'Divide and Rule'. In the year 1961, Pandit Jawahar Lal Nehru, the then Prime Minister of free India decided to revive the lost legacy of 'Phool Walon ki Sair'. He asked Mr. Noor Uddin Ahmed, the Mayor Of Delhi, Taimur Jahan Begum, scion of the Mughal Dynasty and philanthropist Shri Yogeshwar Dayal, scion of a prominent family of Delhi to revive this beautiful festival giving a chance to people of Delhi to once again relive this beautiful tradition and spread the essence of communal harmony in the society.

The revived festival was celebrated on 6th of September, 1962. The PM Pandit Jawahar Lal Nehru became a part of 'Phool Walon ki Sair' and visited Mehrauli on the occasion to celebrate this festival as long as he lived. This was the new beginning of the festival and it has grown ever since that time. Every Prime Minister of India has been taking a keen interest in this festival and coming forward to celebrate it religiously promoting communal harmony in our country.

When Indira Gandhi was the Prime Minister of India, every state was also invited to be a part of this festival and participate in it. Thus, it was no longer a festival confined only to the citizens of Delhi, it progressed to promote national integration by weaving all the States of India into a garland of flowers of Phool Walon Ki Sair. Since its revival in the year 1962, this festival is organized each year by a society called the Anjuman Sair-e-Gul Faroshan, registered under the Societies Registration Act, set up by Yogeshwar Dayal. After he passed away, the responsibility was handed over to his daughter Usha Kumar who took charge as its general secretary and the festival is celebrated under her leadership.

SIGNIFICANCE

Phool Walon ki Sair, is also called 'Sair-e-Gul Faroshan' after the name of the society which organises this festival every year since the year 1962. Many people become a part of this celebration and their enthusiasm keeps the tradition alive making it a festival of merriment and joviality. The importance of Phool Walon ki Sair can be seen in the very essence of communal harmony and national integration it promotes. India is a blend of many religious cultures and is known for its spiritualism and beliefs. Not maintaining harmony among people with different beliefs can lead to the downslide of India which might also take a dangerous turn destroying the social fabric of our country. The need to be tolerant and accept others beliefs thus becomes imperative for our nation. The festival Phool Walon ki Sair not only celebrates the age-old Mughal tradition but also helps the people to understand the importance of coming together as one community, celebrating and maintaining good relations with one another. By organising this festival learning about teamwork and coordination that can be brought among different religions and thus bringing tolerance, peace and trust amongst each other. These rich traditions help keep the identity of our nation intact and promote peaceful living. Thus, it can be easily seen how this festival is such an important celebration which should be promoted more and more, especially in today's time when all we need is to promote peace and being secular. Over the years, this festival other than promoting communal harmony, has also started focusing on national integration by inviting and requesting states all over the country to participate in this festival in order to show the diversity of our country in all its traditions and cultures. One can agree, since its birth this festival is growing each and every year, promoting the beautiful culture of India.

HOW IS IT CELEBRATED?

Over all these years, this festival has changed in ways it is celebrated without losing its original essence and tradition. In today's time it is celebrated in a more extravagant manner and on a larger scale. In the Mughal era, the Mughal king was its patron, but since the time of Pandit Jawahar Lal Nehru, this festival has Prime Minister as its main patron.

By Simran Tyagi

The festival, Phool Walon Ki Sair, is a week-long celebration around the time when the weather shifts from summer to winters. It begins with the procession from the famous Nizamuddin Auliya Dargah till the Khawaja Bakhtiyar Kaki Dargah at Mehrauli. Processions are also taken out at India Gate and Chandini Chowk during this week. These processions are led by dancers, shehnai players/ musicians along with the florists bearing exceptional and large floral pankhas, chhatra (canopy) and chaadars. When they reach Mehrauli, the chaadar and pankha is offered at the dargah of 13th century Sufi saint, Khwaja Bakhtiyar Kaki whereas the pankhas and chhatri is offered at the Yogmaya Temple, the shrine of Devi Jog Maya. The celebration of this festival is graced by a varity of cultural programmes including Kathak performances, the most awaited qawwalis and adding another layer of amusement fair with various stalls, kite flying competitions, traditional sports, wrestling bouts and much more. The recent additions to this festival are the cultural troupes from various states showing the diversity of Indian culture making it an attraction for many to attend. The mela is arranged for the local people at the mango orchards in Mehrauli and the main cultural programme is celebrated at the Jahaz Mahal located in a corner of Hauz Shamsi in Mehrauli, which

was built in the Lodhi dynasty era giving it a more national integration vision along with communal harmony. After which the floral pankhas, chaadar, chhatras are presented at the two shrines. During this 7-day festival, side events also include presenting a pankha to the President, Vice President of India and Lt. Governor of Delhi as per their availability by taking processions by the locals to their residence who also give their blessings for this festival. A day is fixed at the Delhi Secretariat to herald this festival, where a pankha is presented to the Chief Minister and Chief Secretary of Delhi and their blessings are taken.

CONCLUSION

Phool Walon ki Sair or Sair or Anjuman Sair-e-Gul Faroshan is a festival that keeps the spirit of harmony alive among not only Delhiites but all those who travel from other states to be a part of this culture. It shows us a path that despite having different faiths and beliefs we can still come together and be one, showing that there can be beauty in diversity and unity at the same time. This festival teaches us how we all can live together as citizens of the nation avoiding all the things that diminish and disrupt our peace. Spreading love only results in moral evolution of human kind and this festival tries to prove it with great zeal. Each religion teaches us about unity in their own way and all the different religions together bring diversity in our country but this festival helps to bring unity in that diversity by allowing everyone to be with one another and spread happiness by celebrating with one another. Exactly how Mahatma Gandhi once said 'our ability to reach unity in diversity will be the beauty and the test of civilization' and this festival helps to bridge that gap and brings us together.

REFERENCES

- **https://www.aa.com.tr/en/asia-pacific/timeline-of-major-communal-riots-in-india/1745756**
- **https://en.wikipedia.org/wiki/Phool_Walon_Ki_Sair**
- **https://www.thehindu.com/society/history-and-culture/the-forgotten-legacy-of-the-phoolwalon-kisair-flowers-for-the-prince/article29887483.ece**
- **https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/phool-walon-ki-sair-celebratesharmony-and-diversity-in-the-countrys-capital/articleshow/50335207.cms**
- **https://indianexpress.com/photos/india-news/celebrating-the-harmony-and-diversity-of-delhisphool-walon-ki-sair-festival-6071350/5/**
- **https://www.delhiplanet.com/2019/10/11/delhi-is-hosting-its-annual-phoolwalon-ki-sair-thisweekend-heres-why-youve-got-to-check-it-out/**

****

CHECKS AND BALANCES

Dr. Prachi Bagla*

In olden times the role of men and women were categorically defined. Men earned and women looked after the kids and household activities, with exceptions apart. Life apparently was simple and smooth and there was a kind of contentment even if the material prosperity was low as one hears such narrations from elderly people. However, in those times, men kept an upper hand as they had the money power. Their upbringing as a superior sex contributed to their not giving an equal status to their wives. Wives on their part also did not assert again due to their own upbringing.

As the society evolved, due to a variety of contributory factors like education, women came out of four walls of their homes and started using their skills and education. This required a new type of equation as far as household work was concerned. Men started helping but primary responsibility remained that of the women only. As working mothers helped the family financially, due to good income level, standard of living improved, children got all the facilities and their desires got fulfilled. They became self-reliant faster and seeing their fathers giving helping hand in household work, they learnt to cooperate in a natural way. Status of women improved tremendously as they became financially सक्षम.

In the current times, it is rare to find a girl who does not prefer to work and chooses to remain at home as a housewife. But for her, life has become too hectic creating pressures from all sides. At home servants, day care, tuition classes, mobiles, TV, and computer etc. have gradually replaced parental care with job becoming a priority for both the partners.

One major fall out in this fast paced era is the marital discord. It has become very common with disharmony stretching up to divorce. This is one scenario in which everyone suffers. It is a very unhappy situation in which the real victim is always the child who pays the price for affluence in terms of lost childhood and confused teens for the ambitions of his parents. Could expensive toys, clothes, mobiles etc. compensate for the lack of personal care of parents? It doesn't seem so given the increased cases of child depression, poor grades, irritable behaviour, and defiance.

What is the way out? The answer lies in time management skills by both husband and wife. Both should learn to balance work and family, both should cooperate with each other, be considerate and give their best to both job as well as family.

****

* *Associate Professor, Department of Commerce, Maitreyi College, University of Delhi*

DILEMMAS AND CHALLENGES OF A WORKING WOMAN

Dr. Pooja Gupta*

The image of a woman in India has transformed a lot since the past. She is not only a homemaker or a housewife, but a skilled and capable working woman. She belongs to the new generation, and is bold, ambitious, career-oriented, and an achiever. She knows how to fulfil her dreams. But, as rightly said by anonymous, 'Life is not always a bed of roses'; the same is true for the life of a working woman. She struggles and faces various challenges every day. Though a woman is strong enough to sail through all the ups and downs, however, there are various situations where she ends up being in a fix. There are times when she is confronted with various dilemmas and challenges, owing to which she is unable to achieve her professional goals and therefore, those need to be addressed.

Fitting 'Many Lives' in 'One Bag'

A working woman lives multiple lives. She is a daughter, might be a sister, a daughter-in-law, a wife and a mother in addition to being a successful working woman. She manages many roles at the same time and no wonders, she manages them well. A woman has to fulfil the demand at work and afterwards various mandates at home. She works towards creating a perfect balance with her work life as well as family life. On one hand as a working woman, she meets deadlines and achieves impossible targets, and on the other hand, she has to cook food, do the laundry, get groceries, pay bills, do the cleaning, attend to the guests or maybe feed the kids, change their diapers, help them fall asleep when they are awake, wake them when they are asleep, pick up toys, crayons, wrappers, and much more! She carefully keeps her car keys, organizer, pen and credit cards, in her bag, while prudently adjusting essential medicines of family members, a diary with important phone numbers, home keys, sometimes the feed and diapers of their kids too, in the same bag.

Working Woman Vs. Working Mom

Being a mother is one of the best blessings in the world. It is one of the toughest yet most satisfying 'job'. Every woman who is a mother can otherwise be also called as a working mother, though those with a professional career handle additional challenges. Moreover, leaving your kid behind at home and going to work is not as easy as just saying or writing it. From the time a mother leaves home for work, till the time she is back after a tiring day's long work, the well-being of her child is the primary continuous concern on her mind. The dilemma she faces all the time is to work or not? To continue working or consider taking a break? Whether a break is required at this time or maybe at a later stage? Am I doing the right thing or being selfish? Taking care of the family

* *Assistant Professor, Department of Botany, Ramjas College, University of Delhi*

and children, and handling the responsibilities of home along with work commitments put a lot of pressure on working moms. A mother is the best concierge for a child. No one else can take care of the child as a mother does. There's absolutely no substitute for a mother's love and concern. But, still for the time when the mother is away, the father or grandparents can look after the child. They can be asked to help out and share the responsibility. After all, raising a child is not easy and the onus is not just on the mother.

The Time Factor

The most obtrusive dilemma faced by a working woman is time management. She already often works 'overtime' and is expected to work more than this. How and from where to extract time to fulfil all the tasks? And what about time to look after herself? There's hardly any scope left for social gatherings and outings. Amidst meeting deadlines, preparing meals for the family and helping the children with their homework, where's the time left? These questions occupy her mind round the clock. The daily prioritising and sorting of to-do list takes a toll on her health and becomes the most difficult task, even if she is a seasoned manager!

The Gender Quotient

"Where do I fit best?", asks a working woman to herself, as she is always been adjudged for being the 'uncommon' part of the mass. She faces a lot of issues at the workplace owing to the fact that she is a woman. Lack of a woman mentor at the workplace might be an additional reason. She is generally questioned about her personal life, about family, marriage and children per se, rather than about her skills, knowledge and experience, before she can be hired for a job that she is best suited for. Be it doubts pertaining to her capabilities or some pre-conceived notions about devoting time to work, travelling to places, or taking up any new challenges, a working woman encounters a range of them. There are biases for promotions and pay disparities that the so-called 'fairer' sex faces. Though she is capable, yet she can't work at odd hours. At times, she misses various opportunities and growth prospects when flexible working hours or travelling is required. Sexual harassment is another plague adding to her agony. In my view, a woman should not be discriminated on the basis of her femininity, instead she should be granted equal opportunities and rights.

Disguised as a 'Superwoman'?

One big mistake a woman commits is to consider herself a 'Superwoman'! She thinks that everything is her responsibility and for every job she is required. She tries to work continuously without pause. In justifying her every role as a woman, she forgets being herself a human being! Overestimating her capabilities is one thing and underestimating others is another faux pas. She commonly does not trust anyone else for some specific tasks, especially child care and some house responsibilities. She feels that even the spouse is not proficient enough to do the job. Mostly, she ends-up being a perfectionist and a 'micro-manager' that pays attention to every minute details and won't settle for

anything 'less'. But, this should not happen and she should refrain herself from always being in the 'leading' role.

Surmounting of Guilt

A girl grows up with the conviction that she is responsible for taking care of her family and kids after marriage and she feels that nothing is going to be in its place without her. That's why, she always finds herself filled with guilt of not accomplishing all the tasks, or not being able to cater to everybody's needs. If she finishes one job, the other remains pending, the blame of which is either given to her or mostly, she herself takes. She asks herself if she is at fault or not? Working mothers are always filled with the guilt of leaving the child behind, of not able to give enough or quality time to their children and of missing out many joyous moments of their growing up. It is this guilt that pulls her down. If the child does not perform well at school, it is the mother who is blamed. She herself also wonders if she has been selfish by neglecting her child.

Recognition or Appreciation

Another dilemma is that though a working woman plays all the different roles assigned to her and manages a 'perfect' balance between the two distant worlds to the best of her capabilities, yet she still doesn't get the recognition or appreciation she deserves. The hard work and efforts rendered by her for the whole family never get due acknowledgement. She is neither encouraged, nor rewarded for whatever she does. Her financial contribution which uplifts the living standard of the family is also ignored. Additionally, she is not given equal status in society.

Trust and Support from Family

It would become easier and less stressful for a working woman if her family supports her. She jolts between work and family, engrossed in various ifs and buts. Many a times, she overlooks her own health. Family members can play an important role in reducing her anxiety and ensuring her good health. They can share responsibilities and do house chores. The support and encouragement of a husband is very crucial for a wife if she wants to work. He can look after children and elders at home and shoulder the burden in many more ways. There should be a trustworthy, safe and reliable childcare at home so that the mother can stay calm and mentally at peace while she is away at work. I would like to add that the children should also be co-operative enough to facilitate a healthy living environment for all.

Last But Not The Least....

Despite all the dilemmas and challenges, in my opinion, a woman is strong enough to fight the hardships, overcome the challenges and find ways to chase her dreams and pursue her career, after all to live a life of her choice! That's what all of us want for our daughters too, isn't it so? Our children would also like to see their independent and successful mothers, whom they would feel proud of.

****

DO YOU KNOW THE "REAL" YOU?

Simran Tyagi*

"YOUR EMOTIONS ARE THE SLAVES TO YOUR THOUGHT AND YOU ARE THE SLAVE TO YOUR EMOTIONS"

- Elizabeth Gilbert

It comes with no surprise that we live in an era where we can't really be sure of who is controlling whom. Can we? And by this I want to bring your attention towards something.....that we feel, "EMOTIONS". Is it us controlling our emotions or is it the other way around? If one can ascertain this, then that person might be able to figure out his thoughts and therefore could control his emotions. And to my way of thinking, I assume this could only be accomplished by the method of "self-analysis" and that leads us to the idea of "INTROSPECTION".

First and foremost, we must introduce ourselves with the significance of "Introspection". What is introspection and why is there a need to introspect? Introspection means to observe your own mental and emotional process. The process of analysing your feelings, thoughts and desires. I believe self-analysis is one big and necessary task to perform. Things which are hard to do, often proves to be exemplary for us.

We, human beings, are likely to get befuddled by our own feelings and caught up in a dilemma. What happens after this is, amidst the chaos of our thoughts, wandering in our minds and crowding our ability to think clearly. We often fall for the wrong choice, which might eventually be the way towards unfortune and a disheartening situation. Isn't it? Decisions taken in anguish or excitement are often impulsive. Rather, I would say when our emotions overpower and we lose the power to think clearly our decisions are in likelihood to be catastrophic. Ever wondered why? Conventionally, we look over the situation hundreds of times, carefully examine it and then come up with the solution. Yet, it rebounds. Maybe sometimes this won't be the case, but you never know.

Now, this tells us that "Introspection" is a different idea than being "Intellectual". A person could be logical, someone who relies on intellect rather than emotions and feelings but might not know much about himself. Maybe that person is so logical, that he puts self behind his emotions. We all are well aware of the fact that being intellectual does not mean that the decision you take would be flawless.

* *B.A., Third Year, NCWEB, Maitreyi College Centre*

Apparently, for a decision to be worthy we must agree to it with our mind (thoughts) and core (emotions). The impeccable balance of heart and mind is what has to be achieved; a little bit of control over your feelings and thoughts. Hardly ever it happens when both of them are in agreement with each other and this is precisely why we need to "Introspect". Knowing ourselves, being clear about what we want, what makes us happy, what disheartens us the most, what is special to us, what we can give up and what we cannot, all those things that matter to us the most, we must take into consideration before taking any significant decision. More precisely, the decisions that affect you. We can do this only when we are aware of our own self.

But then again, controlling your feelings does not mean to hide them. If you are feeling happy or are low, share it. It is perfectly alright if you want to be alone sometimes, or if you want to escape and be in your own world. One thing you might want to do is to put on your headphones and zone out for a moment because all this might help you to get to know yourself better. In this moment, some of your questions might get answered. Feel every emotion, just don't let them overpower your inner self.

Therefore, to know your feelings, to control your emotions, to have a correct balance of mind and core, to be confident and to be truly happy, you must begin the quest and voyage to your soul, your very own self. To not be okay is as important as to be okay and likewise, to introspect is as important as to be an intellectual.

Ask yourself this question "Do you really know the "real" you? And tell yourself

"IT IS OKAY TO NOT BE OKAY"

****

Emotional Intelligence - The Expert Speeks

Emotions are driven by impulses over which we have little or no control, sometimes taking us to the extent of even harming ourselves and stopping us to care for emotions of others through a harsh response. To deal with this psychologists talk about emotional intelligence which will impact our communication skills, academic and professional success, mental disposition, physical health, ability to deal with stress and improving morale & motivation. This term, introduced by the psychologists Mayer and Salovey in 1990, is explained as the ability to recognise emotions in ourselves and others, handle interpersonal relations empathically and to understand and guide our thoughts and behaviours. Its key elements are social skills, self-awareness, self-regulation, motivation and empathy (Daniel Goleman). The research has shown that an emotionally intelligent person will be able to get along better with others, will be more successful, emphatic and compassionate compared to others.

It can be added here that though high intelligent quotient (IQ) is necessary for success in life, but equally important is emotional intelligence and high emotional quotient (EQ) . It is certainly not IQ vs EQ. Both have their own unique importance. IQ is what one is born with, emotional intelligence is acquired and is evolved over time. A major role in development of emotional intelligence is how one is raised as a child but appropriate measures can be taken in one's adulthood to get emotionally 'smarter'. This is something we all should address and continue to work towards it and improve it for the rest of our lives.

Aakanksha Kapoor
Counselor, Maitreyi College,
University of Delhi

"ME, MYSELF AND....I"

Dr. Rita Nagpal*

The modern society, the millennials, is characterized by the people who are always under continuous pressure of doing the best, striving for higher targets, excelling in life, competing with others and aspiring to be better than the rest. But in this process these millennials have become very self-centered and individualistic. As a result our ancient Indian virtue of caring and supporting others is becoming rare. The feeling of oneness and brotherhood is losing sense. The Vedic Philosophy of "Vasudhaive Kutambakam" is vanishing fast. People are just bothered about their own self. They can't think beyond this. So they prefer a life without interference from anyone else. Personal life, self-interests, benefits and hobbies have become more important than collective interests and collective growth. The fast growing concept of my privacy, my personal space is hitting the family values and culture of our society. Therefore the family life and the almost-forgotten social life are becoming concepts of yesteryears. Today, people prefer to live alone in nuclear family, drive alone, shop alone, enjoy alone, grow alone and their whole world revolves around their own "Me, Myself and... I ".

Being mindful of your own needs and preferences is neither bad nor selfish rather it is called 'self-care'. Self-care is equally important as well because if we don't care for ourselves we can't care for anyone else. But being completely self-centric and concerned only about your own self i.e. "I, Me and Myself" is selfish. That is when your every action and conduct is only for your personal benefits, goals, desires, feelings, dreams, opinions, achievements and pleasure; may be at the cost of human values, social ethics and feelings of others. Such self-absorbed people are, in fact, the most hollow and miserable ones. They can't think beyond their personal interests, accomplishments, problems and perspectives. They are never able to appreciate the spirit of community, the sense of belonging, or in

* *Associate Professor, Department of Commerce, Dayal Singh College, University of Delhi*

simple words, our basic human attributes. These attributes are the essence of being human and differentiate us from all other planetary beings. Only we, the humans, have the ability to understand the feelings/problems of others, be kindhearted and generous, appreciate others, have a compassionate heart, a helping hand, a listening ear, an honest smile to soothe, comfort or help others. All these fast vanishing but much needed attributes have the potential to change the world around us.

In fact, to keep pace with the fast growing, highly demanding competitive world, people have started following the "Utilitarian Approach". According to this, one thinks in terms of cost-benefit arguments only. So whatever people do for anyone, they want a similar or higher benefit in response. They always want the best returns for their efforts in the shortest period of time.

Moreover they can't stand others growing, rather, they are jealous of the prosperity and success of others. They always want to be ahead of others so working together, helping others, making sacrifices for others is completely out of question. Consequently the 'group feeling' is facing the most heat from this self-centric behavior of people. These days one may witness the lack of empathy, compassion and support in team games, music concerts and other group activities. Individuals want to enjoy all the privileges of being a member of the team without taking any of the responsibility. They want to shine alone. The philosophy behind this is "I am more important than my game/group". This has fueled the notion of a 'crowd of individuals' instead of a 'group of performers'. No one wants to give up his 'freedom' for being a part of the team though they don't hesitate to expect the opposite from others.

This hypocrite but smart generation of millennials believes that they are better than others in all respects and continue doing whatever they think is correct, without bothering about the feelings of others, their relation with them or their ethical responsibilities towards them. However in the process of proving their supremacy they hurt their precious relations and are left alone. Besides this, an inner void gets created within them which makes them emotionally insecure and distressed personalities. Furthermore, to overcome this insecurity and to fill this emptiness, they get engrossed in collecting material wealth, making more virtual friends, gathering continuous appreciation by flaunting

and showcasing a delightful life on social media. They are always engaged in their social media status, updating it minute by minute, presenting each small thing in a big way, counting likes and comments to feel accepted and important. These people are often very anxious, fake and disrespectful for others, unless others behave as per their rules and get co-opted into their sphere of influence. There is no place for selflessness, kindness, sensitivity and concern for anyone else but their own self. They get so much obsessed with their selfishness that they fail to appreciate their relations, sense of belonging, the group feeling and many other precious feelings and would end up being lonely and regretful one day.

Fortunately this way of living is not our way of living. As very rightly stated by our ancient saint Buddha

"In separateness lies the world's great misery, in compassion lies the world's true strength."

We belong to a nation of rich heritage and values. 'Service before Self' is the philosophy of our country. For us service is an expression of our true self and humanity comes before everything. It is not something which has been imposed upon us rather it is our ideology of human existence. In many of our Indian families, the day still begins with touching the feet of the elderly of the family and with prayers. We still separate the first portion of our meals as an offering to God and also to feed the needy. We believe in loving, caring and sharing. We cherish the family values. Our celebrations are not complete without seeking the blessings of our elderly and selfless donations.

But in this present era of changing ideologies, it is our duty to inculcate these values and philosophy in our young generation. We have to be good role models. We have to teach by practicing the same values. It's high time to curb the alarming insanity of "I, Me and Myself" from infecting the whole sphere! People must understand that no act of generosity and love, however small it may be, will be ever wasted; rather it will make them better human beings along with making the world a better place to live. Along with this it is important to remember that our life is for loving, caring, sharing, supporting, forgiving, healing, growing and spreading happiness, compassion and hope all around.

****

PATERNITY LEAVE : A STEP FORWARD TOWARDS GENDER EQUALITY

Apurva Setia*

The World Economic Forum's recently published Global Gender Gap Report 2020 is right on time with the answer: about 100 years, give or take.That's when we'll have equality at this current pace [1.]

Achieving gender equality at work should be a priority for any workplace in 2020. Several factors come into play, from the persistent gender pay gap, flexible working hours and paternity leave. A crucial part of the fight for gender equality that has been overlooked is support for men as caregivers. Around the world, laws, policies, and stigmas still push women to be caregivers and prevent men from even having the option. Paternity leave is a period of time that a father is legally allowed to be away from his job so that he can spend time with his new born. It varies substantially around the world. Paternity leave can either be paid or unpaid.

A recent UNICEF report analyzed legally protected leave for new parents in 41 of the world's richest countries and praised a handful of countries, most of them in Scandinavia, for offering paternity leave, and parental leave in general but the data from most countries is disappointing. Some of the wealthiest nations in the world provide little or no government-supported paternity leave for new parents. [2.]

Sweden is a good example of how countries are trying to break gender stereotypes through family leave and pay policy. It allows for up to 480 days of paid parental leave, provided both parents take at least 90 days each. Sweden has embraced the shared entitlement, and it's now frowned upon if the fathers do not take up a generous portion of the leave on offer. [3.]

In India, pursuant to enactment of Maternity Benefit Act, 2017, a bill known as the Paternity Benefit Bill, 2018 (PB Bill) was proposed in the Lok Sabha mandating that paternity leave of 15 days, extendable up to three months, be granted to new fathers. If the bill sees the light of day, fathers will be able to get paternity leave extendable up to

* *Assistant Professor, Department of Commerce, Maitreyi College, University of Delhi*

three months. In the absence of a law, each organization is allowed to frame its own rules.

While Japan's approach to paternity leave looks very progressive with an impressive 30 weeks leave available to new fathers, in 2017, just 5% of fathers who qualified for it took paid leave. Two years after Australia started a parental leave program for new parents, only one father for every 500 mothers was taking it. In the UK, 40% of dads choose not to take the parental leave offered. And in the US, the figures are worse: 76% of men take less than a week off when their baby is born. [4.]

Turns out, regulation is only a small part of the problem. Fathers often don't take this leave, even when it's available to them, and this practice is extremely common around the world. Why are we seeing such little momentum in breaking traditional gender roles and why are young fathers not taking the legally entitled leave even when most of them are looking for a better balance between work and family ?

Financial consideration is a major factor in making leave decisions. In most countries, women still make less money as compared to men. So, economically speaking, it just simply makes more sense for fathers to continue working.The time around childbirth is often a time of stress on household budgets. Many families may feel that they cannot surrender that. For obvious reasons, fathers' use of parental leave is highest when leave is not just paid but well paid.

But the most fascinating reason is that the majority of men around the world still fear the impact it would have on their careers. Most workplaces regard a father taking a long break as not being committed to his job, leading fathers contemplating a longer leave to fear for their career and promotion prospects. The result is troubling workplace gender ratios that are impossible to dismantle.

In countries such as Finland, Norway and Germany, both parents are legally mandated to take some time off when a child is born. But in other countries, where family leave is not guaranteed by law, the responsibility then falls to companies to create policies that bring with them cultural change. While a lot of organisations are moving towards gender-neutral leave policies, offering equitable parental leave for parents and recognising the demands of changing family structures, gender norms and cultural traditions still present significant barriers to fathers taking leave.

Public policy is one of the best solutions to enable fathers to spend more time with their children. But if we want to succeed in a better sharing of paid and unpaid work

between men and women, change needs to come both from employers and fathers themselves. It's not only about promoting equality at work and at home but also about improving the quality of life for men, women and children.

As attitudes change and countries increasingly start to recognise its importance, access to paid paternity leave is improving. But globally, paternity leave is still an afterthought. This is bad, because the data are available and it's clear- When men take paternity leave, women also benefit – they end up returning to work more quickly, feeling better, and the sharing of household duties continues as a pattern for years.

Having paid maternity leave alone also skews the field against working women as companies may be less interested to hire and promote women if they see paid maternity leave as a burden. One solution is - if one works backwards – to mandate paid paternity leave. This will allow new fathers to be more hands-on with care-work, decrease the burden on new mothers and end discrimination against working women on account of maternity leave. Mandated paternity leave is a win-win scenario for the firm and the new father.

Paternity leave is one of the most effective long-term investments in changing, challenging, and shifting gender stereotypes. When men take paternity leave, it affirms that caregiving is everyone's responsibility but social change can be slow and is often divided generationally. Even as paternity leave itself may take a generation to accept, its effect on women in the workplace may take another generation to kick in. It's going to take all of us to drive the national-level policy changes that families and businesses need. But along with policies, we also need a major culture change.

REFERENCES

1. **https://www.weforum.org/reports/gender-gap-2020-report-100-years-pay-equality**
2. **https://www.unicef-irc.org/publications/pdf/Family-Friendly-Policies-Research_UNICEF_%202019.pdf**
3. **https://www.theguardian.com/us-news/2020/jan/29/paternity-leave-us-policy**
4. **https://www.oecd.org/gender/what-dads-can-do-for-gender-equality.htm**
5. **Maternity and paternity at work report : International Labor Organization**
6. **https://www.theguardian.com/commentisfree/2015/apr/10/want-better-dads-happier-mums-and-healthier-kids-make-men-take-paternity-leave**

****

ISSN 2581-9917

PET CARE IN US AND INDIA

Roop Dhillon*
Prachi Bagla**

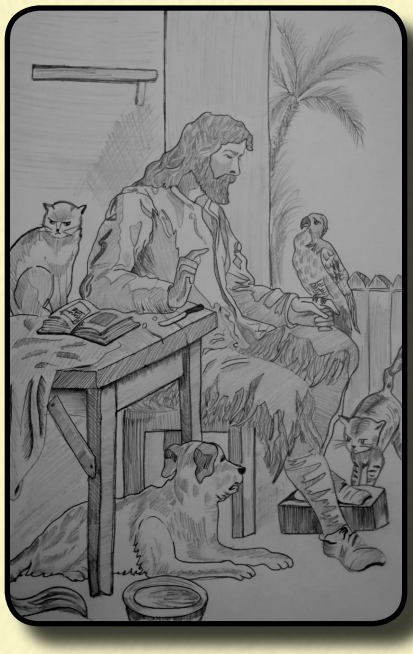

By Simran Tyagi

In Daniel Defoe's 1791 novel, Robinson Crusoe spent some 28 years in isolation on an island off the coast of Venezuela with his pets- a dog, a talking parrot, two cats and a tame goat. Out of these his dog not only gave him company but also helped him in hunting, herding, patrolling the island and most importantly, comforted him when Robinson was ill. Many of you will also remember growing up with Lee Falk's famous character- Phantom, the ghost who walks, who along with his horse named Hero and dog named Devil safeguarded lives of tribal people living in Africa from pirates, thieves and criminals. The ability of Devil in sensing danger and to identify people with ill-intentions makes him one of the most memorable comic book character from animal kingdom.

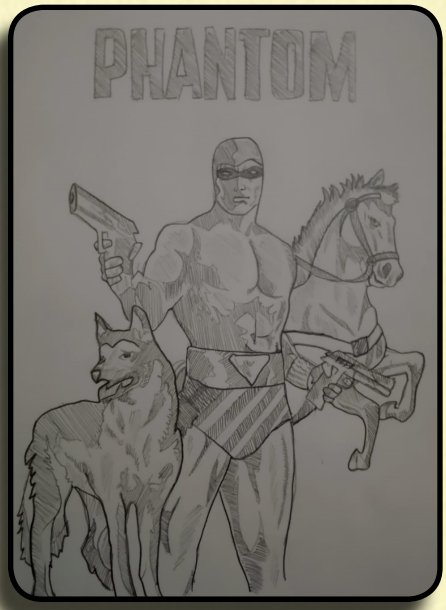

By Simran Tyagi

Historically, domesticated animals and pets have played a critical role in human evolution, helping with hunting and farming etc. In modern times, pet owners, who now like to be called pet parents/guardians, keep pets not only for companionship, emotional support, safety of their homes and property but also because of their love for animals. Elderly adults who live alone, or do not have their working children around the whole day, or do not have much social life, like to keep pets. In western countries many hospitals utilize trained animals to take care of the physical, social and emotional

* *Owner, Black Mountain Road Clinic, San Diego, USA*
** *Associate Professor, Department of Commerce, Maitreyi College, University of Delhi*

needs of patients. Many patients who suffer from low blood glucose and seizure disorder can opt to have a "service dog", trained to identify early signs of medical deterioration alerting other family members or patients to take corrective actions.

The aim of this paper is to discuss how pets are taken care of in the American and Indian society. Although there is a long list of different pet animals, in both the countries, and in fact the world over, dogs are the most favourite pets. So, this paper is written with reference to dogs to maintain a common thread.

Which pets ?

Pets are beloved members of family in the United States of America (US) with almost 70% of households owning some type of pet. Although dogs and cats are the most popular, many people have fish, birds, rabbits, reptiles like lizards, bearded dragons as well as rodents like guinea pigs and gerbils as their pets. In India too love for pets has increased in the recent times. The constitution of India gives every citizen of India a right to own a companion animal [Article 51(g)]. Here, people own a variety of animals that are domestically found like dogs, cats, fish (in aquariums), horses, cattle etc, but some animals like rodents, turtles, and birds like parakeets are not allowed to be kept as pets. In India, dogs are the most popular pets and number of people keeping dogs is increasing, but reliable data on proportion of households having a pet in India are not available.

Pet owners in India face some opposition and conflicting situations from neighbours and Resident Welfare Associations or society management, who treat pets as a nuisance but under the guidelines of Animal Welfare Board of India, people do have a right to keep their pets.

Managing pets

Millennials (those in the 25-39 age group) comprise the largest pet owning demographic in US. They delay marriage and start families late therefore they consider pets as important part of their family. Considerable money is spent in buying hi-tech toys and gadgets, pet clothing, pet strollers, special food items, and organic and natural products etc. It is a challenge for working people in America to manage their pets, especially when they are away from their home for work or vacations. The society recognizes need for someone to care for animals in absence of the owner. Several options are available. Some pet owners hire part time pet sitter to have their pets fed, walked, and bathed while they are at work. Others opt to drop them at a pet day care

facility. This is a more expensive option, but day care centres allow dogs and cats to be out of the house and in a friendly and social environment. Day cares have good amenities which include pools, beds and personal TVs for their clients! Owners who are missing their pets can even communicate with them through web cams. In US, pet day care centres become critically important when the owner needs to be away from home for an extended period due to unexpected illness or travel. It is refreshing to point out that in such instances, neighbours and sometimes even strangers are happy to care for the pets if placing pet in day care is financially difficult for the owner.

Indian society is catching up in this regard. An unthinkable possibility two decades ago, dog boarding services are now becoming increasingly available in large metropolitan cities in India. For instance, there are some 34 such centres in Delhi where working couples can leave their dogs during the day with payment per day. Predominantly, nuclear families in which both husband and wife are working, and children are busy in their activities use such facilities. Those who can afford can also hire private trainers to take care of their pets in a professional way. Some arrange an exclusive household help for this purpose; in other instances, the work for the pets is shared among the family members. In the latter case, the major tussle is who will take the dog for a walk. It is not difficult to find disinterested people, with eyes glued to the cell phones, holding leash in another hand, eager to return home as early as possible.

Health care

Veterinary Hospitals in the United States offer a wide range of services for pets which include testing for fleas, worms, skin conditions, allergy testing, cancer treatment, cardiology, dental care, vaccinations, eye care, emergency and critical care as well as surgeries. Most hospitals incorporate diagnostic tools like ultrasound, digital X-rays and electrocardiogram (EKG) to diagnose diseases. Lasers have proven to be useful tool for modern veterinary medicine and many clinics use them as a surgical tool.

Microchipping is widely available in US veterinary clinics. It is a small chip inserted beneath the pet's skin containing all the identification information on it. It is used to identify rightful owner in case the pet is lost or separated from its family. It is popular as it provides permanent identification that cannot fall or be removed, and it will last a pet's life time. Such facility is seldom used in India.

Preventive Care for pets

Preventive care or general wellness visits are proactive approaches to health care. Regular check ups with veterinarian can detect problems early in a pet or prevent them altogether. Preventive check-up can help in avoiding nutritional deficiencies, dental problems, fleas and ticks etc. Vaccinations are critically important part of the preventive care offered by the providers. Proper vaccination for pets is a legal requirement in the US.

In the US hospitals and clinics, check ups normally begin with a general health evaluation. This includes a thorough history about a pet's breed, age, life style behaviour and diet. A physical exam is done to check weight, temperature, pulse, breathing, to preventive care like vaccinations, parasite control, reproductive counselling, diagnostics (blood work, x-rays etc.), dental care and weight maintenance and a plan for follow up and next scheduled visit.

Preventive care in India too is picking up in recent times on exactly the same lines as in US, though not so prevalent yet. Animal hospitals offer a comprehensive dog wellness program consisting of annual or half yearly preventive care examinations. Pet owners are educated by the experts on what to do at home to keep their dogs fit. For a good advice, the doctors assess the health status of the pet based on the answers by the owners and a full physical examination.

Pet Insurance

In the US paradoxically, only 1-2% of pets are insured which shows that despite the high percentage of pet ownership, there is a low participation in pet insurance. Pet insurance plans are generally reimbursement plans- you pay the bills upfront and are reimbursed by the insurance provider. Basic pet insurance covers routine services like exams and wellness visits while a more advanced insurance covers surgeries and other non-routine procedures.

Similarly, pet insurance is not popular in India. Insurance companies do not find it worthwhile as pet care is poor and as many pet owners are not very particular even about the vaccinations and the mortality rate of pets is very high. Moreover, in the absence of any target clients, insurance companies do not find it profitable to spend money on costly advertisements. Therefore, in India, insurance is mainly available for the racing horses, cows and buffaloes etc., as the owners of these animals depend on them for their livelihood, but there is no significant insurance market for other pets.

Laws

In US, people are very serious about humane behaviour towards their pets. Animal protection laws in America, known as anti-cruelty laws, regulate the abuse of animals. The Animal Welfare Act authorizes the United States Department of Agriculture to regulate the use of animals in research settings, exhibitions, circuses and transport. Cruelty to animals is a serious crime. Those convicted, can face substantial fines and up to seven years in prison. Still, there are countless instances where animals are abused and are ill-treated. Fortunately, there are many organizations who rescue such animals, provide them proper care, shelter, medical care and eventually find a proper loving home for rescued animal. Many of such organizations are voluntary undertakings by champions of animal lovers and safety advocates. Mostly, these organizations receive generous financial support from common citizens. Like any other charitable activity, there are examples of financial misappropriations by some of such organizations, but majority of reputable animal welfare organizations do an exceptional work to help animals mistreated or abandoned by their owners.

In India the Prevention of Cruelty of Animals Act 1960 defines cruelty against animals as beating, kicking, torturing, starving and mutilating the animal. These are cognisable offenses. The penalty for such acts is unreasonably meagre Rs 10 to Rs 50 only. The Act provided for establishment of an animal welfare board to supervise the laws relating to cruelty against animals and advising the government on amendments of laws, prevention of suffering of animals during their shifting, slaughtering, sheltering during their old age etc. Amendments to this 1960 Act are under consideration with a proposal to make animal cruelty non cognisable because in the current form there is no major deterrence to ill-treatment of a pet by its owner.

In America, legally all pets must wear a collar and ID tag when out in the public. Dog waste is a potential source of E-coli and other bacterial infections that can contaminate the water supply and soil. Therefore, by law, all pet owners are required to remove or clean up all faecal waste deposited by their dogs on public and private property. This includes neighbour's yard, sidewalks, city parks and school properties.

In India too, pet dogs are required to wear a collar when out of the house. However, most dog owners display no respect for cleanliness of the roads, back lanes or even the parks when they take their pets out for a walk. Such undisciplined behaviour is unacceptable and laws are required to prohibit pet owners from contaminating the public space.

Pets will continue to play an important role in human society. However, owning a pet is an important responsibility that should not be taken lightly. Pets need to be treated with love and affection. Their basic nutritional and health care needs should be met. The owners need to ensure that their pets do not pose any danger or nuisance to the neighbours or society. A happy and well-behaved pet tells more about its owner than about its own pedigree.

In a housing complex in Orlando, US, a specific area is earmarked for the residents to take their pets for a walk. If the pet relieves itself on the way to that area, the owner is supposed to clean the spot. For this purpose, pet care stations (that have a roll of plastic bags that can be torn off one at a time, and a small trash can) are set up at various places throughout the complex. Violations of the clean up policy are enforced with the help of CCTV cameras. Besides the office maintains a record of DNA of the pets of the residents in case there are repeated violations at an area not covered by CCTV's. All these measures serve as a deterrent against pet owners dirtying the complex. However, visitors to the US report that in many places no one bothers to keep their area clean and people have to walk with their eyes glued to the pathway (places not mentioned here) Humans are alike everywhere.

References

- **https://www.businesstoday.in/money/insurance/pet-insurance-india-dog-insurance/story/14354.html**
- **https://www.petbacker.in/india/boarding/delhi/new-delhi/pets-sitter-and-foster-care-serviceshttp://exhibits.usu.edu/exhibits/show/definingpets18th21stcenturies/petsasfamily**
- **https://m.economictimes.com/industry/healthcare/biotech/healthcare/pet-care-comes-of-age-in-the-country-with-state-of-the-art-vet-hospitals/articleshow/63447008.cmshttps://www.indiantrailanimalhospital.com/services/dogs/preventive-care-dog-health**
- **https://www.indianheadanimalhospital.com/catlist/48-dog-preventative-care.html**
- **https://www.financialexpress.com/money/insurance/love-your-dog-birds-other-pets-go-for-pet-insurance/1506941/**
- **https://m.timesofindia.com/india/paying-rs-50-fine-for-animal-cruelty-may-soon-be-over-as-govt-mulls-stricter-law/articleshow/77711298.cms**
- **https://blog.ipleaders.in/overview-prevention-cruelty-animals-act-1960/**

****

RUDRAMA DEVI : THE WARRIOR QUEEN

Aradhana Singh*

By Simran Tyagi

Our history textbooks are replete with tales of powerful and brave Kings (read men), fighting hard in the battlefield to save their realm from threats within and outside the dominion. However, women are conspicuously missing from this 'valorous' narrative, where we rarely hear of female rulers and queens. Does this mean that not a single woman in history occupied the throne or ruled even one of the innumerable regional and nationwide kingdoms we hear of? Or even when historical sources highlight a few instances where women actually navigated through powerful positions, historians and writers of history chose to look the other way and subdue such narratives? Unfortunately, here, the latter seems to be the case. In this article I am going to introduce to you one such exemplary female who effectively ruled a kingdom in thirteenth century India and bravely fought a two-sided battle, the threat of territorial conquest from the outside and on account of being a woman, patriarchal oppositions from within her realm. She is Queen Rudrama-devi, the fourth independent ruler of the Kakatiya Dynasty of Andhra.

One of the most prominent rulers of the Kakatiya Dynasty, Rudrama-devi ruled the kingdom for a long period, roughly from 1262 to 1295 CE. The sway of the Kakatiya Dynasty (c. 1150 to 1323 CE) was spread over present-day Telangana region, with Orugallu (later Warangal) as its capital. We do not have much information on the early history of the Kakatiyas. Historians generally agree that they were the feudatories of

* *Assistant Professor, Department of History, NCWEB*

the western Chalukya kings from around the eighth century, and it was King Rudradeva I who declared independence from the Chalukyas in 1163 CE. King Ganapatideva, who assumed the reign in 1199 CE, conquered some parts of coastal Andhra and played an important part in uniting the Telugu speaking regions. Ganapatideva had no sons to succeed him to the throne and it is in the lack of a male successor that he appointed his elder daughter Rudrama-devi as successor and heir to the Kakatiya throne. The father-daughter duo ruled jointly for several years, till Ganapatideva's death, when Rudrama-devi finally assumed the throne as an independent ruler in 1269 CE.

Despite being one of the longest serving dynasts of Kakatiya rule, Rudrama-devi has brazenly been neglected by most historians and writers of early Indian history. People knew very little about her, till historian Cynthia Talbot truly rescued "another daughter chosen as her father's successor from the historical oblivion,"[1] as she famously put it. In documents contemporary to her time, Rudrama-devi is frequently referred to as a 'male.' Talbot's inscriptional study shows that out of a total of 62 inscriptions, 52 (that is a significant 84 per cent) refer to her as mahārāja (King), using the masculine version 'Rudra-deva' as her name. An early fourteenth century text composed during the reign of her successor Pratāparudra, states that her father Ganapatideva took the decision to represent Rudrama-devi as a male and thereby call her Rudra. Some trace the roots of this complex arrangement to the putrikā ceremony,[2] whereby in the absence of sons, a man could appoint his daughter as 'male heir.' In the midst of intense opposition from the nobility, Ganapatideva resorted to this ancient observance. It is also widely believed that to keep up the appearance she actually wore masculine clothes in public and received training in martial and kingly skills from childhood. Although contemporary historical records are silent on how she reacted to this arrangement or how the concealment of her 'real' identity affected her emotionally, the famous Telugu movie (Rani Rudrama Devi, 2015) based on her life tries to capture the emotional turmoil she must have experienced. Quite early on in life she had to face the harsh reality of a patriarchal society where her identity as a woman was seen as the biggest obstacle in her claim to power. However, her long reign is testimony to the fact that she was not budged by all the opposition and discontent around, but instead proved her mettle as a successful warrior and administrator.

In spite of the popular belief that she was presented as a 'male', evidence from sources other than textual records indicates that in reality there was no actual attempt to deceive the public. Several visual sources discovered in Kakatiya territory portray her as a female and most importantly, Rudrama-devi chose to depict herself in feminine form on pillar brackets of the temples she constructed. Two sequential sculptures recently

discovered at Bollikunta village in Telangana's Warangal district show that Rudrama-devi died fighting a fierce battle with Kayastha chieftain Ambadeva. Interestingly, the portrait sculptures retained 'Rudrama-devi's commanding and imperial personality with characteristic gesticulation of a ferocious warrior.' According to the Superintending Archaeologist, D. Kanna Babu, 'the portraits also reveal her characteristic feminine qualities like 'oval face, soft cheeks, wide eyes, slender nose and a tender pair of lips.'[3]

Rudrama-devi's accession to the Kakatiya throne abounded with dissensions and protests. Warring neighbors like the Yadavas of Devagiri, the Gangas of Kalinga, and the Pandyas of Tamil region, to name a few, saw her as a weak ruler whose accession meant an opportunity for them to conquer and annex the Kakatiya territory. She chased the invading Yadava army back to Devagiri, defeating the Yadava king Mahadeva. Upon this important victory she adopted the title rāya-gaja-kesarī, meaning the 'lion who rules over the elephant kings', and built a commemorative pavilion in the Swayambhu temple of Warangal, choosing to depict herself as a woman warrior mounted on a lion, with her sword and shield in hand, evoking the image of the fierce goddess Durga. The Yadava records, however, present a different story, according to which their king Mahadeva 'spared' Rudrama-devi and 'allowed' her to win because she is a woman. When compared to other contemporary sources, this just appears to be king Mahadeva's tactics to save face, as defeat at the hands of a woman was considered even worse in those times. And what better way to gleam over it than create a false narrative of 'respect' and 'veneration' around it. The Yadavas were not her only opponents as in the year 1262 CE, the Ganga king of Kalinga Narasimha I marched into and occupied the Vengi region. It took Rudrama-devi a total of 15 years to recover back her territory, with the help of her commanders Poti Nayak and Proli Nayak. Moreover, the toughest challenge to her authority and rule came from the Pandyas.

People from the Kakatiya realm too rebelled against her. The feudatory noblemen vehemently opposed the rule of a woman. One of her rebellious feudatories, Ambadeva, who desired to become an independent ruler, joined hands with Kakatiya enemies like the Pandyas and Yadavas. As per legend and recently discovered visual evidence, Rudrama-devi died fighting his army like a true warrior. Not just Ambadeva, she had to face rebellion from her other own nobles also, including the famous Hariharadeva and Murarideva.

But though constantly entangled amidst the fear of political and territorial conquests, Rudrama-devi proved herself to be an able administrator. She started many new projects, like the completion of the Warangal Fort, the construction of which was started by her father. She increased the height of the walls, adding a second wall and a moat, rendering

it an extremely strong and impregnable fort. Rudrama-devi is also credited with the construction of a number of beautiful temples and buildings, with monolithic pillars and gateways (toranas) adding to the charm. Her initiation and contribution towards several welfare programmes is now being increasingly acknowledged. She is believed to have dug tanks aiming to bring several acres of land under cultivation, thereby enhancing agricultural productivity of the region. An inscription discovered at Chandupatla in 1994 by a soldier of Rudrama Devi's army Puvvula Mummadi, mentions a village tank, Rasamudram, built during the Kakatiya Samudram. Even before ascending the throne, she made it a point to familiarize herself with the people and places, frequently visiting several parts of her kingdom and pilgrimage centres. The personal connection Rudrama-devi sought to establish with the people she governed reveals her fine sense of politics and governmental capabilities.

Rudrama-devi introduced some radical changes in the administrative structure as well, for example, her new policy of recruiting people from non-aristocratic families into the army as commanders, was a significant development in those times and was highly objected too. Facing opposing from within her kingdom, this particular measure is believed to have been directed at gaining the trust of commoners and to win new loyalists. The art of warfare was integral to the establishment and success of Kakatiya dynasty from the very beginning. Taking this tradition forward Rudrama-devi introduced the nayankara system of military organization, which became extremely popular during the Vijayanagar rule. Under this system, the holders of nayankaras or Nayakas were granted a block of territory consisting several villages, in lieu of which they were expected to provide troops for the central Kakatiya administration, as and when needed. This system proved highly effective on several counts: it strengthened the organization of the Kakatiya army; resulted in building a loyal base of officers and simultaneously weakened the power of local nobles, who had become dominant by this time.

Rudrama-devi was married to Chalukya prince Virabhadra, a member of the Vengi Chalukyas, after Ganapatideva's conquest of Vengi in 1240 CE. Virabhadra is not heard of as discharging any significant political or administrative role. They had three daughters, Mummadamma, Ruyamma and Rudrama, but none succeeded her to the throne. Instead Rudrama-devi designated her eldest daughter's son Prataparudra as heir.

Thus, ruling for close to four decades, Rudrama-devi strongly held her ground, and is now recognized as a great warrior, ruler and administrator of 13th century India. Venetian traveler Marco Polo paid glorious tributes to her for excellent administration

and rule, describing her as 'a lady of discretion, who always strove to achieve justice and equity.' But even he got her identity wrong, assuming that she is Ganapatideva's widow and not daughter, as in those times it was more common for widows acting as the King's regent, till a male successor assumed responsibility. Marco Polo is not the only one here as several other later historical texts from Andhra region described her as the Kakatiya king's wife and not daughter.

This extraordinary tale of bravery and courage clearly shows that it is not always that women were denied access to power; but even those exceptional circumstances when they did occupy the most powerful positions, their achievements and stories were often buried beneath the popular patriarchal narrative. The artificial but deep-rooted connections between the early Indian concept of kingship and masculinity rendered it necessary for even powerful and deserving women to adopt masculine identity. But at the same time, the very fact that this identity could be 'adopted' by embracing certain masculine ways poses a strict challenge to the biologically based ascription of social roles. It reveals the façade around the construction of feminine and masculine identities and the stereotypical social roles attached therewith.

Notes and References:

1. **Talbot, Cynthia., "Rudrama-devi, the Female King: Gender and Political Authority in Medieval India", in David Shulman ed. Syllables of the Sky: Studies in South Asia in Honour of Velcheru Narayana Rao. Oxford University Press: 1995. p.394.**
2. **We find a mention of the institution of putrikā in the Manusmrti, during the discussion of property and inheritance rights. Scholars believe that the putrikā enjoyed all the rights and privileges of a son. Olivelle, Patrick., "Rhetoric and Reality: Women's Agency in the Dharmaśāstras" in Languages, Texts, and Society: Explorations in Ancient Indian Culture and Religion. Anthem Press: 2011. p.252.**
3. **https://www.thehindu.com/news/two-sculptures-of-rani-rudrama-devi-shed-light-on-her-death/article21268201.ece.**
4. **Garodia, Archana., The Women Who Ruled India: Leaders, Warriors, Icons. Hachette Book Publishing: 2019.**
5. **https://feminisminindia.com/tag/rudrama-devi/.**
6. **https://www.livehistoryindia.com/herstory/2017/07/05/rudramadevi-a-king-like-no-other.**
7. **https://swarajyamag.com/magazine/a-queen-with-a-mission.**

****

EVIDENCE OF OBSTETRIC VIOLENCE AMONGST THE INDIAN MIDDLE-CLASS WOMEN

Tanya Singh*

Abstract

Increasing the number of institutional deliveries is a major goal of any government. However, at times, this focus leads to unwanted consequences such as neglect of women during childbirth due to inadequate infrastructure and acts of abuse during childbirth. The main victims of such apathetic development are women belonging to the disadvantaged sections. However, this paper, using information collected from surveys, argues that obstetric violence is not just a developmental issue that arises due to the lack of public facilities. Rather, it is a reflection of patriarchal norms and violence against women in general as women from even economically advantaged sections and those who have access to proper private facilities have to face significant amount of obstetric violence too, as evidenced in this paper.

Introduction

A major focus of the government towards the cause of development has been to invest in policies and programmes to increase the number of institutional deliveries. However, this focus has been extremely myopic, with the aim being a higher number of deliveries rather than the quality of care provided to women. This is what is witnessed during institutional births, when substandard, sometimes almost inhumane, care is delivered by healthcare professionals. Women face verbal abuse and discrimination; made to deliver on the floor due to lack of beds; not provided pain relief to avoid prolonged births and invasive procedures are performed on them without their knowledge or consent. These acts of violence taken together are termed obstetric violence.

Obstetric violence is categorized into various categories such as physical, verbal and sexual abuse, neglect and abandonment of care, any form of discrimination, and lastly, unnecessary surgeries and iatrogenic procedures such as caesarean sections. The last category, that of over-treatment has been witnessed on a large scale in developed countries, especially, USA. The other forms of violence have been attributed to developing and underdeveloped countries, but mainly in the context of economically and socially disadvantaged women, who mainly rely on the public system for health needs. This paper presents a study of women belonging to the middle-income category and their experiences during childbirth.

Literature Review

- ***Concept and Terminology***

* *B.A. (Hons.) Batch 2017-20, Lady Shri Ram College, University of Delhi*

Obstetric violence is a relatively new term, which first gained recognition amongst the legal circles in Venezuela around 2007. However, discussion around dehumanized birth procedures emerged in Brazil during the early 1990s. 'Obstetric violence' is defined as having occurred when routine medical or pharmacological procedures associated with labor are conducted without allowing the woman to take decisions regarding her own body (D'Gregorio, 2010)[1]. Such treatment is antithetical to the Universal Rights of Childbearing Women charter according to which every woman has the right to dignified, respectful sexual and reproductive health care, including during childbirth (White Ribbon Alliance, 2011)[2]. Global public recognition of the issue came only during the mid-2000s. It is only during the last decade that the term has come to be recognized as both a legal, as well as a social category. A rights-based approach to addressing the issue such as the WHO's stance that 'abuse, neglect or disrespect during childbirth can amount to a violation of a woman's fundamental human rights' (Vacaflor 2016)[3], has been helpful in bringing public attention to this issue. However, a lack of global standard measures of abuse means that reported prevalences of mistreatment varies across different populations and national contexts, from 20% in Kenya (Abuya et al., 2015)[4] to 43% in Ethiopia (Wassihun & Zeleke, 2018)[5] to 98% in Nigeria (Okafor et al., 2015)[6].

- ***Evidence from other countries***

While the term "obstetric violence" is not commonly used in studies in the USA, the abuse of women undergoing pregnancy and gestation is now gaining increased attention in recent years. Often referred to as "dehumanized care" or "medicalization of birth," reports of women feeling objectified, disrespected, or otherwise violated during pregnancy and childbirth have surfaced repeatedly. Pathologization and medicalization have been attributed as the main causes behind the continuance of obstetric violence (McGarry et al. 2017)[7].

Latin America has seen the emergence of the legal concept of obstetric violence that encompasses elements of quality of obstetric care and mistreatment of women during childbirth - both issues of global maternal health import. This new legal term emerged out of continuous efforts by women's organizations, feminists, international and regional institutions, and public health activists and researchers to improve the quality of care that women receive across the region. The result has been a number of legislations across countries of this region, with obstetric violence now being a recognized public health issue (Williams et al. 2018)[8]

- ***Studies in India***

Although research pertaining to obstetric violence has been geographically limited in India, high prevalence of different forms of 'obstetric violence' in both public and private medical facilities has been found, albeit with varying levels of intensity. It was found that institutional delivery was perceived as threatening and childbirth was considered to be a negative experience by a number of women (Barnes, 2007)[9]. Physical abuse was found to be the dominant form of violence, with women reporting

being slapped, pinched or beaten by health care providers while delivering, especially in public hospitals (Shrivastava and Sivakami, 2020)[10]. However, sexual abuse was found to be low, which could be attributed to perceived stigma and discrimination and accompanying discomfort while reporting the same (Bohren et al., 2015)[11].

Patel et al. (2015)[12] found that discrimination, especially caste-based discrimination, was a common phenomenon in obstetric settings. The findings corroborate with those of another study (Raj et al., 2017)[13], which reported that out of the women surveyed, 2.3% were treated differently because they belonged to a particular caste or community. For example, Goli et al. (2019)[14] found that obstetric violence was significantly higher among Muslim women when compared with Hindu women and among women of lower castes relative to women belonging to the general category. Apart from caste, class is also considered to be an important factor in determining the incidence of obstetric violence. Although Nawab et al. (2019)[15] found that women of lower social standing were subjected to greater levels of mistreatment, Diamond-Smith et al. (2017)[16] found that being in the higher wealth quintile (relative to the lower) was significantly associated with higher reporting of mistreatment during childbirth.

Dey et al. (2017)[17] reported that lack of informed consent was a major issue in public health facilities as 47.8% of women reported not being provided with adequate information on delivery procedures, and 27.0% reported that their consent was not taken before conducting delivery procedures. Moreover, medical negligence and carelessness were not uncommon (Chattopadhyay et al., 2018)[18]. Women faced difficulties due the unavailability of a professional and at times had to deliver alone (Sudhinaraset et al., 2016)[19]. Also, it was observed that only those women who were going to deliver were attended, otherwise they were left to suffer (Bhattacharya and Sundari Ravindran, 2018)[20]. A common practice that was reported by a number of studies was the lack of a birth companion as family members were generally not allowed in the room due to infrastructural constraints (Sudhinaraset, 2016)[19].

Nayak and Nath (2018)[21] highlight how as opposed to caesarian sections being the dominant form of operating procedure, India witnesses a high number of episiotomies, mainly amongst the patients of public hospitals. Though caesarean sections are very often seen as a means of making money quickly in the private sector and as a means of quicker labour in the public sector. But a more unknown, and widely performed invasive medical procedure is episiotomy, where an incision is made in the skin between the vaginal cavity and the anus to make the pathway for the baby bigger. Although this procedure is not supported scientifically, it is still carried out in large numbers. It is believed that hospitals that do not have enough resources find it is easier to surgically make a tear than to risk a tear later that will lead to complications that hospital staff and doctors are not prepared to handle. Sometimes, such operations are performed without anaesthetics, to either save time or costs, or due to the belief amongst health provider that since women are already in pain, no anaesthetic is required because they won't feel much' (Chattopadhyay et al., 2018)[18].

Bhattacharya and Sundari Ravindran (2018)[20] found that women reported being subjected to excessive force during examination or delivery.

Chaturvedi et al. (2015)[22] reported the lack of good-quality care in public settings, with inadequate staffing, infrastructure, equipment and cleanliness. According to Sharma et al. (2019)[23], reports of stray animals such as dogs and cows roaming throughout facility compounds and often taking shelter in wards and labour rooms were not uncommon. Such unhygienic conditions and a lack of basic amenities were considered to be forms of abuse by some women (Bhattacharya and Sundari Ravindran, 2018)[20]. Apart from this, Bhattacharya & Sundari Ravindran (2018)[20] highlighted how women experienced a loss of autonomy as they were made to undergo vaginal examinations or deliveries in the presence of strangers without any curtains or privacy.

A number of studies concluded that women tend to normalize acts of 'obstetric violence' that are evidently harmful, such as physical abuse and applying unnecessary force during delivery (Chattopadhyay et al., 2018, Nawab e al., 2019)[18][15]. Though women would report being subjected to physical coercion or shouting, they would not necessarily perceive these acts as abuse. Madhiwalla et al. (2018)[24] has elaborated on the practice of suppressing women's expression of pain while delivering a child. Some women are asked to keep quiet when they shouted out in pain, or are physically or verbally abused as it is considered important to 'discipline' labouring women. This is according to the expectations and norms set by providers around what is acceptable behaviour during delivery. This degree of normalization was also found to be associated with certain socio-demographic factors. When women who were poor or belonged to sections of lower social standing were subjected to 'obstetric violence', they were unable to identify and describe the low quality of care or discrimination (Diamond-Smith et al., 2017)[16]. The same study also found that dimensions of empowerment related to social norms about women's values and roles were associated with their experiences of mistreatment during childbirth. Similar studies from other countries have found that socio-demographic factors such as higher parity, lower socioeconomic status and HIV-positive status have been reported to predispose women to disrespect and abuse during childbirth in a facility (Bowser & Hill, 2010; Diniz et al., 2015)[24][25].

Methods

This paper makes use of the tool of online surveys to collect responses. The decision to conduct online surveys was taken after considering three factors in total. First of all, limitations imposed by the Covid-19 pandemic rendered data collection difficult and an unsafe procedure. Second, given that the survey involved answering questions that need one to recall possibly traumatic events and the fact that reproductive health is a highly stigmatized topic, in-person interviews could involve alteration of answers where the individual subject's perception of the interviewer's potential judgement of their responses might lead to altered responses as a type of Hawthorne effect. The element of confidentiality and anonymity increases the possibility of receiving true and more complete answers in case of issues that are considered taboo, such as sexual and

reproductive health. Lastly, given that the research was aimed at studying a population with a certain socioeconomic level and access to technology, the amount of bias in the data would be less than if one were to take a national representative sample due to the digital divide that exists in India.

A total of 112 responses were received and out of those, 91 were of women belonging to the middle-income category (defined as women belonging to households that have an annual income that ranges between Rs 2,00,000 and 12,00,000). A number of open-ended as well as multiple-choice questions were asked in the survey. The data was analyzed using the empirical-statistical method. The questions asked during the survey are mentioned below:

a) Have you ever heard the term "obstetric violence"?

b) Which of the following income brackets you belong to?

c) Obstetric violence is the neglect, any form abuse and lack of respect during childbirth. It can occur in any of the following ways. Please check any that you feel may apply to you and elaborate on your experience if you wish to.

- **i) Physical Abuse**
- **ii) Non-Consented Care**
- **iii) Non-Confidential Care**
- **iv) Non-Dignified Care**
- **v) Discrimination**
- **vi) Abandonment of Care**
- **vii) Detention in Facilities**
- **viii) Other**
- **ix) None of the Above**

d) Did you ever experience discrimination of any kind during pregnancy, labour or postnatal care? If so, please explain.

e) Were there any things that made you feel uncomfortable or that you wished had been done differently?

f) Choose the place(s) where your delivery/deliveries have taken place

- **i) Private Hospital**
- **ii) Public Hospital**
- **iii) Home**

g) On a scale of 1 to 5, answer to what extent did you feel emotionally and mentally supported during pregnancy and after giving birth? 1 signifies complete unsatisfaction and 5 signifies complete satisfaction.

Results

- ***Choose the place(s) where your delivery/deliveries have taken place.***

Out of the total respondents, 84.4% had given birth in a private hospital whereas the rest 15.6% had given birth in public hospitals.

- ***Have you ever heard the term "obstetric abuse" before?***

Out of 91 women, 19.8% reported having heard the term "obstetric violence", whereas, for the rest of 80.2% women, the answer was in the negative.

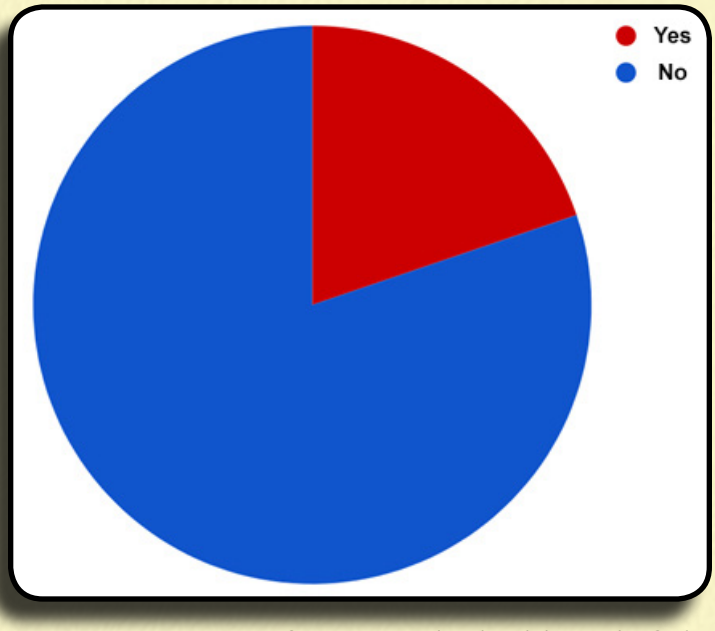

Fig.1: Percentage of women who had heard of the term "obstetric violence"

- ***Obstetric violence is the neglect, physical abuse and lack of respect during childbirth. It can occur in any of the following ways. Please check any that you feel may apply to you and elaborate on your experience if you wish to.***

54.4 % of women reported having faced at least one form of abuse, whereas the answer for the rest 43.2%, the answer was in the negative. Out of the women who had faced abuse, 9.25% reported having faced more than one kind of violence. The most prevalent form of abuse was reported to be physical abuse (24.2%), followed by discrimination (11.6%), non-confidential care (11.6%) and non-dignified care (6.3%). The prevalence of non-confidential care was shown to be high among public hospitals.

Amongst the private hospitals, the major category of abuse was found out to be that of physical abuse, followed by discrimination. Amongst the public hospitals, non-confidential care was the most widely chosen category followed by physical abuse and discrimination.

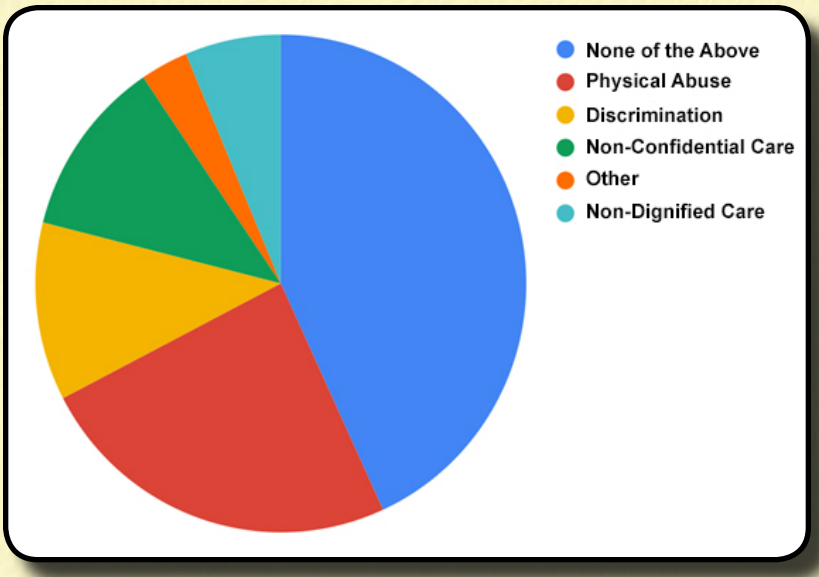

Fig. 2: Forms of obstetric violence experienced by women

- ***Did you ever experience discrimination of any kind during pregnancy, labour or postnatal care?***

Based on the responses, 13.2% of women answered in the affirmative, whereas the others answered in the negative. Out of all the women who reported having faced discrimination, each response cited

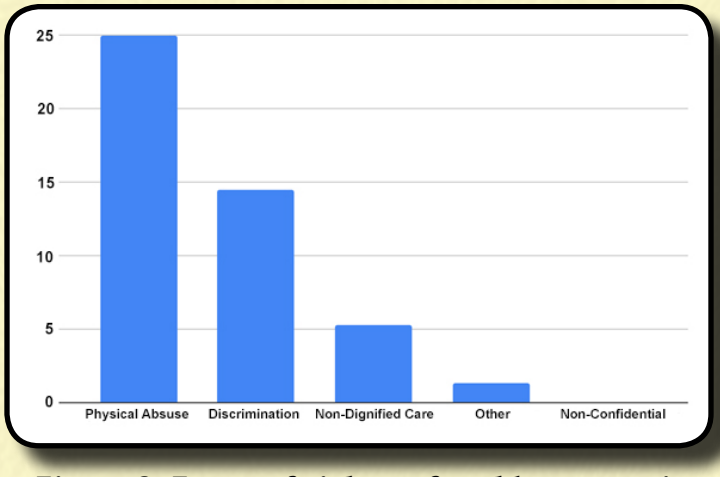

Figure 3: Forms of violence faced by women in private hospitals

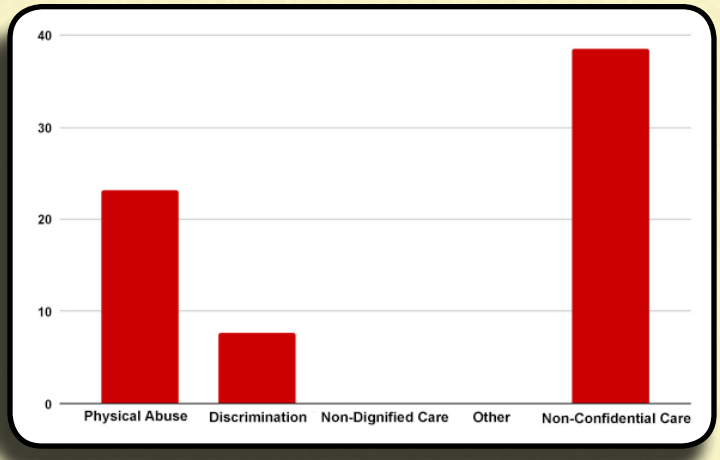

Figure 4: Forms of violence faced by women in public hospitals

caste-based discrimination as the reason, except one where the respondent complained of culture-based discrimination. All the cases of discrimination were reported for private hospitals and none for public hospitals.

- ***Satisfaction Rate***

The average satisfaction rate on a scale of 1 to 5, was found to be 3.93. When asked whether they wished there were things that could have been done differently, 52.7% responded in the affirmative.

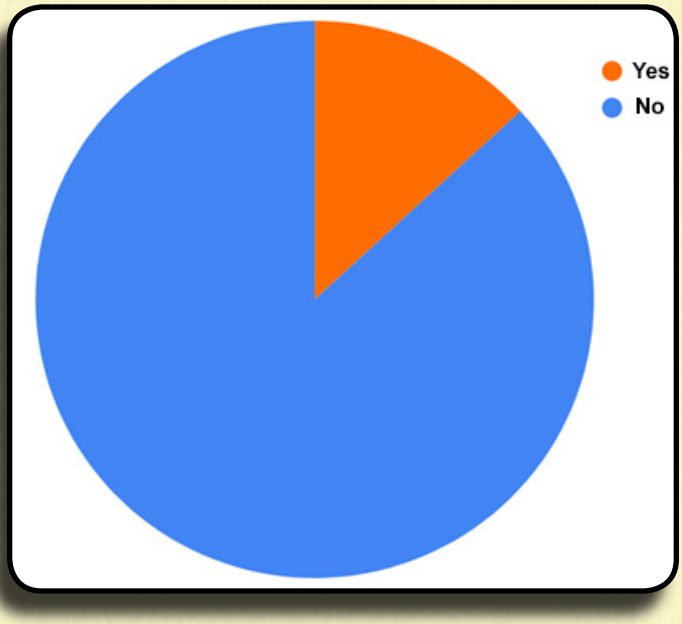

Figure 5: Percentage of women who faced discrimination of any sort

Discussion

The results presented above are revealing as obstetric violence is attributed only to poor public health infrastructure and since a major part of the poor relies on it, poor women are thought of as sole victims of obstetric violence. However, the survey brings to light a category of women who belong to the middle-income groups and rely mostly on the private sector for fulfilling their health needs in hope of better facilities, however, they too end up facing abuse during the process of childbirth. A few key observations are to be made from the results of the survey.

Firstly, the awareness about the concept of obstetric violence is abysmally low, even amongst women of socioeconomically better-off sections. Second, physical abuse is the dominant form of violence as opposed to non-confidential care, which is more prevalent in public hospitals, and surgical procedures which is more prevalent in the

developed countries. Thirdly, discrimination features as a key component of violence and has been experienced in one form or the another by women. This reveals how this issue interacts with other evils of Indian society such as caste-based discrimination, color-based discrimination, et cetera.

The reasons attributed to such a situation include the patriarchal nature of the society wherein, even doctors hold negative gender stereotypes. Also, the relationship between doctors and patients usually endows a doctor with more power, wherein a doctor's opinion commands greater attention, and this opens up space for misuse of power. It must be realized that a woman has an absolute right over her body and should always command the right to be informed about or refuse any procedure that she does not wish to materialize.

Also, the idea of successful childbirth cannot be defined just as the survival of the infant and the mother. It should also include practices that are safe and humane, such as the presence of supportive family members, proper place of birth and respect and dignity during labour. In India and other parts of the Global South, structural violence unequally distributes the risks associated with childbirth with poor women disproportionately bearing these risks. However, infrastructural and spatial deficiencies mean that such support is not available to women due to hospitals getting overcrowded.

Conclusion

Clear systemic issues such as an insensitive medical curriculum, lack of resources and time, a lack of accountability, patriarchal norms and a historic normalization of gender-based violence allow 'obstetric violence' to happen (Chattopadhyay et al., 2018)[18]. It is important that in the long-run, gender-transformative education and clinical practices are developed and taught to medical professionals. Such education and practice should be aimed at promoting gender equality and equity in health with the aim of addressing health inequalities that are a result of gender roles and unequal gender-relations in society (World Health Organization, 2007)[26]. With the serious mental health consequences that come up with such violence that prevails in the society, it is important that we start investigating into the issue of why despite proper infrastructure and better status of women does obstetric violence exist even in the private sector. Given that negative childbirth experience leads to maternal stress and slows down the labour process, thereby increasing the chances of complications and post-partum depression, there is need for a rights-based approach to tackling obstetric violence (Freedman et al., 2014; Gausia et al., 2012)[27][28]. There is also the need for a legal and justice system that recognizes this as an issue and locates obstetric violence as a peculiar form of violence that is gendered and intersects with multiple axes of structural inequalities such as caste, ethnic differences, class differences, region and

religion in India, producing a negative, violent and painful experience of pregnancy and childbirth.

References

[1] **D'Gregorio, Rogelio Pérez. (2010): "Obstetric violence: a new legal term introduced in Venezuela." 201-202.**

[2] **Alliance, W. R. (2011). Respectful maternity care: the universal rights of childbearing women. White Ribbon Alliance.**

[3] **Vacaflor, C. H. (2016). Obstetric violence: a new framework for identifying challenges to maternal healthcare in Argentina. Reproductive health matters, 24(47), 65-73.**

[4] **Abuya, T., Warren, C. E., Miller, N., Njuki, R., Ndwiga, C., Maranga, A., ... & Bellows, B. (2015). Exploring the prevalence of disrespect and abuse during childbirth in Kenya. PloS one, 10(4), e0123606.**

[5] **Wassihun, B., & Zeleke, S. (2018). Compassionate and respectful maternity care during facility based child birth and women's intent to use maternity service in Bahir Dar, Ethiopia. BMC pregnancy and childbirth, 18(1), 294.**

[6] **Okafor, I. I., Ugwu, E. O., & Obi, S. N. (2015). Disrespect and abuse during facility-based childbirth in a low-income country. International Journal of Gynecology & Obstetrics, 128(2), 110-113.**

[7] **McGarry, J., Hinsliff-Smith, K., Watts, K., McCloskey, P., & Evans, C. (2017). Experiences and impact of mistreatment and obstetric violence on women during childbearing: a systematic review protocol. JBI database of systematic reviews and implementation reports, 15(3), 620-627.**

[8] **Williams, C. R., Jerez, C., Klein, K., Correa, M., Belizan, J. M., & Cormick, G. (2018). Obstetric violence: a Latin American legal response to mistreatment during childbirth. BJOG: An International Journal of Obstetrics & Gynaecology, 125(10), 1208-1211.**

[9] **Barnes, L. (2007). Women's experience of childbirth in rural Jharkhand. Economic and Political Weekly, 62-70.**

[10] **Shrivastava, S., & Sivakami, M. (2020). Evidence of 'obstetric violence in India: an integrative review. Journal of biosocial science, 52(4), 610-628.**

[11] **Bohren MA, Vogel JP, Hunter EC, Lutsiv O, Makh SK, Souza JP et al. (2015) The mistreatment of women during childbirth in health facilities globally: a mixed-methods systematic review. PLoS Medicine 12(6), 1–32.**

[12] **Patel P, Makadia K and Kedia G (2015) Study to assess the extent of disrespect and abuse in facility based child birth among women residing in urban slum area of Ahmedabad. International Journal of Multidisciplinary Research and Development, 2(8), 25–27.**

[13] Raj A, Dey A, Boyce S, Seth A, Bora S, Chandurkar D et al. (2017) Associations between mistreatment by a provider during childbirth and maternal health complications in Uttar Pradesh, India. Maternal and Child Health Journal, 21(9), 1821–1833.

[14] Goli, S., Ganguly, D., Chakravorty, S., Siddiqui, M. Z., Ram, H., Rammohan, A., & Acharya, S. S. (2019). Labour room violence in Uttar Pradesh, India: evidence from longitudinal study of pregnancy and childbirth. BMJ Open, 9(7), e028688.

[15] Nawab T, Erum U, Amir A, Khalique N, Ansari MA and Chauhan A (2019) Disrespect and abuse during facility-based childbirth and its sociodemographic determinants. A barrier to healthcare utilization in rural population. Journal of Family Medicine and Primary Care, 8(1), 239–245.

[16] Diamond-Smith N, Treleaven E, Murthy N and Sudhinaraset M (2017) Women's empowerment and experiences of mistreatment during childbirth in facilities in Lucknow, India: results from a cross-sectional study. BMC Pregnancy and Childbirth, 17 (Supplement 2), 129–141.

[17] Dey A, Shakya HB, Chandurkar D, Kumar S, Das AK, Anthony J et al. (2017) Discordance in self-report and observation data on mistreatment of women by providers during childbirth in Uttar Pradesh, India. Reproductive Health, 14(1), 1–13.

[18] Chattopadhyay, S., Mishra, A., & Jacob, S. (2018). 'Safe', yet violent? Women's experiences with obstetric violence during hospital births in rural Northeast India. Culture, health & sexuality, 20(7), 815-829.

[19] Sudhinaraset M, Treleaven E, Melo J, Singh K and Diamond-Smith N (2016) Women's status and experiences of mistreatment during childbirth in Uttar Pradesh: a mixed methods study using cultural health capital theory. BMC Pregnancy and Childbirth, 16(1), 1–12.

[20] Bhattacharya S and Sundari Ravindran TK (2018) Silent voices: institutional disrespect and abuse during delivery among women of Varanasi district, northern India. BMC Pregnancy and Childbirth, 18(1), 1–8.

[21] Nayak, A. K. and Nath, S. There is an Urgent Need to Humanise Childbirth in India. Economic and Political Weekly. Vol. 53, Issue No. 2, 13 Jan, 2018. https://www.epw.in/engage/article/urgent-need-to-humanise-childbirth-in-india

[22] Chaturvedi S, De Costa A and Raven J (2015) Does the Janani Suraksha Yojana cash transfer programme to promote facility births in India ensure skilled birth attendance? A qualitative study of intrapartum care in Madhya Pradesh. Global Health Action, 8, 27427.

[23] Sharma G, Penn-Kekana L, Halder K and Filippi V (2019) An investigation into mistreatment of women during labour and childbirth in maternity care facilities in Uttar Pradesh, India: a mixed methods study. Reproductive Health, 16(7), 1–16.

[24] Madhiwalla N, Ghoshal R, Mavani P and Roy N (2018) Identifying disrespect and abuse in organisational culture: a study of two hospitals in Mumbai, India. Reproductive Health Matters, 26(53), 36–47.

[24] Bowser D and Hill K (2010) Exploring Evidence for Disrespect and Abuse in Facility-Based Childbirth: Report of a Landscape Analysis. USAID-TRAction, Boston.

[25] Diniz SG, Salgado H de O, Andrezzo HF de A, de Carvalho PGC, Carvalho PCA, Aguiar C de A and Niy DY (2015) Abuse and disrespect in childbirth care as a public health issue in Brazil: origins, definitions, impacts on maternal health, and proposals for its prevention. Journal of Human Growth and Development, 25(3), 377–384.

[26] WHO (2007) Integrating gender into the curricula for health professionals. World Health Organization, Geneva. URL: https:// www.who.int/gender/documents/ GWH_curricula_web2.pdf

[27] Freedman LP, Ramsey K, Abuya T, Bellows B, Ndwiga C, Warren CE et al. (2014) Defining disrespect and abuse of women in childbirth: a research, policy and rights agenda. Bulletin of the World Health Organization, 92, 915–917.

[28] Gausia K, Ryder D, Ali M, Fisher C, Moran A and Koblinsky M (2012) Obstetric complications and psychological well-being: experiences of Bangladeshi women during pregnancy and childbirth. Journal of Health, Population and Nutrition, 30(2), 172–180.

[29] Diamond-Smith N, Sudhinaraset M, Melo J and Murthy N (2016) The relationship between women's experiences of mistreatment at facilities during childbirth, types of support received and person providing the support in Lucknow, India. Midwifery, 40, 114–123.

[30] Freedman LP and Kruk ME (2014) Disrespect and abuse of women in childbirth: challenging the global quality and accountability agendas. The Lancet, 384(9948), e42–e44.

[31] Grilo Diniz, C. S., Rattner, D., Lucas d'Oliveira, A. F. P., de Aguiar, J. M., & Niy, D. Y. (2018). Disrespect and abuse in childbirth in Brazil: social activism, public policies and providers' training. Reproductive health matters, 26(53), 19-35.

[32] Jundt, K., Haertl, K., Knobbe, A., Kaestner, R., Friese, K., & Peschers, U. M. (2009). Pregnant women after physical and sexual abuse in Germany. Gynecologic and obstetric investigation, 68(2), 82-87.

[33] Sadler, M., Santos, M. J., Ruiz-Berdún, D., Rojas, G. L., Skoko, E., Gillen, P., & Clausen, J. A. (2016). Moving beyond disrespect and abuse: addressing the structural dimensions of obstetric violence. Reproductive health matters, 24(47), 47-55.

****

हिन्दी भाग

स्पर्श : जीवन से मुक्त होने की तरफ ले जाती उम्र की एक अवस्था

ज्योति प्रसाद*

शब्द के साथ जादू होता है। किसी भी शब्द के साथ एक छवि जुड़ी हुई है, इसके साथ ही आवाजें और तजुर्बों के गुच्छे भी शामिल हैं। यदि गांधीजी का नाम लिया जाए तो दिमाग में पहली छवि भारतीय नोटों पर बनी हुई उनकी तस्वीर सबके जेहन में पहले पहल उतर जाती है। हालाँकि इस बात पर बहस की जा सकती है कि नोटों के अलावा अन्य तस्वीरें उभर सकती हैं, लेकिन इस बात पर सब मिलजुलकर सहमत हो सकते हैं कि गांधीजी के नाम के साथ एक वृद्ध व्यक्ति का चेहरा जुड़ा हुआ है। इसी तरह दादी, नानी, दादा और नाना शब्दों को पुकारा जाए तो सभी मानसिक अथवा तय सोच से समझ जाएंगे कि इन व्यक्तियों की उम्र क्या होगी। हो सकता है दिमाग में सफेद बाल वाली छवियाँ उभर आएँ। उम्र एक सच्चाई है। वृद्धावस्था जीवन के अंतिम चरण का एक पड़ाव है। जीवन और मृत्यु के दर्शन में कुछ लोगों के मत के अनुसार यह अवस्था नए जीवन की तरफ ले जाती है। यह प्रक्रिया मृत्यु के माध्यम से होती है। कुछ लोगों के अनुसार वृद्धावस्था जीवन की दुखद अवस्था है। इसमें व्यक्ति दूसरों पर निर्भर हो जाता है और लगभग असहाय रहता है। इन सब आम खयालों में जो छूट जाता है, वह है किसी व्यक्ति की महत्ता, उसकी अनुभव पूँजी और मानवीय संबंधों की गरिमा।

उम्र

शैशव अवस्था से उम्र से बढ़ते हुए वृद्ध होना जीवन में एक सच्चाई है। उम्र को देखा जा सकता है। उसे छुआ जा सकता है। उदाहरण के लिए हमारे सफेद बाल, जिन्हें देखकर एक उम्र में अफसोस होता है। सिकुड़ती हुई त्वचा को छू कर यह एहसास होता है कि शरीर बदल रहा है। उसके भीतर और बाहर कुछ बदलाव धीरे-धीरे आ रहे हैं। व्यक्ति चाहे या न चाहे, ये बदलाव उसके शरीर में उसकी इजाजत के बगैर होने लगते हैं। जैसे हमारे बाल, सफेद होने की आज्ञा नहीं लेते। ठीक इसी तरह काम करते-करते हम जल्दी थकने लगते हैं। हमारा शरीर थकने की हमसे आज्ञा नहीं लेता। शरीर के बाकी अंगों के साथ भी यही होता है।

किसी भी व्यक्ति के जीवन को देखें तो उम्र के कुछ साफ बंटवारे दिख जाते हैं। ये उम्र के पड़ाव हैं। शिशु, बच्चा, नौजवान, वयस्क, परिपक्वता की ओर जाता व्यक्ति और फिर वृद्ध-अवस्था। घर परिवारों में हमने इन इंसानी उम्र के पड़ावों का एक फ्रेम भी बना दिया है। शिशु ऐसा जो नटखट हो। बच्चों के साथ उनका शरारती होना जुड़ा है। नौजवान होते बच्चे थोड़ी जिद्दी और गुस्से को पालने वाले माने जाने लगे हैं। वयस्क समझदारी से जीवन जीते हुए माने जाने लगे हैं। बूढ़े होने पर ऐसे व्यक्ति की छवि बनाई गई है, जो घर में सलाहकार है। कुछ महत्वपूर्ण मामलों में फैसले लेने वाला व्यक्ति है। विरासत में मिले हुए सामाजिक, धार्मिक और परम्परागत कायदों का पालन किया जा रहा है या नहीं, ये निगरानी भी घर के 'बड़े बुजुर्ग-व्यक्ति' पर ही अमूमन देखने को मिलती है।

पर महिलाओं के लिए वृद्धावस्था कुछ और ही परिभाषा लिए होती है। यह जेंडर की सिमेंटिंग ही है जो हमें अखरती नहीं है। उदाहरण के लिए बुजुर्ग औरतों की लोकप्रिय छवियों को जबरन आदर्श की चाशनी में डुबोया जाता है। मसलन, वह धार्मिक महिला होगी, गैर-पारिवारिक लोगों से संपर्क न करने वाली, फीके रंग के साधारण से कपड़े पहनने वाली, दुनिया की तमाम शोर-शराबे वाली चीजों से इतर उसके हाथ में एक तस्बीर होगी, वह कहानियाँ सुनाना जानती होगी, घर के किसी कोने में बैठने वाली, पुराने रीति-रिवाजों का पालन करवाने और करने वाली, अकेले रहने वाली, मासूम और ममता के इत्र में डूबी हुई तो कभी खड़ूस भी। यह भी संभव है कि पति की मृत्यु के बाद उसके जीवन का इकलौता साथी खुद उसका अकेलापन होगा। ये छवियाँ आमतौर पर परिवारों में ऐसे जमा दी गई हैं कि बुजुर्ग महिला को इनसे बाहर देखा ही नहीं जाता। इसके अलावा ये छवियाँ साहित्य और सिनेमा के चलते भी बेहद आम हैं।

यदि कोई स्त्री इस उपर्युक्त छवि से बाहर आधुनिक कपड़ों अथवा थोड़े बहुत शृंगार के साथ जीने की कोशिश करती है, तब उसे 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' जैसी अमानवीय कहावतों से ताना मारने वाले लोगों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह बढ़ती उम्र के साथ

* सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एनसीडब्ल्यूईबी, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)।

मानसिक बदलावों के चलते व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को समझने वाले लोगों की भी कमी है। इसके लिए 'बूढ़ा सठिया गया है' जैसी अन्य कहावत है। इसके अलावा 'पाँव कब्र में है' जैसी कहावत भी इंसानी गरिमा को ठेस पहुँचाने वाली है। विडंबना यह है कि तथाकथित पढ़ा-लिखा आधुनिक समाज आज भी इन कहावतों का इस्तेमाल बिना झिझके और खटके करता हुआ दिखाई देता है।

उम्र का बढ़ना मानसिक और शारीरिक बदलाव की प्रक्रिया है। बात यहीं नहीं रुकती। इसके साथ-साथ हमारे निजी और बाह्य रिश्तों पर असर होता है। हमारे रहन-सहन में फर्क आने लगता है। पसंद बदलने लगती है। यहाँ तक कि हमारी पसंद पर कई लोग हमारी उम्र के मुताबिक अपनी पसंद और चुनावों को आरोपित करने लगते हैं। उदाहरण के लिए अमूमन घरों में वृद्ध व्यक्तियों के लिए कपड़ों के रंगों में भारी परिवर्तन होता है। फीके और बुझे हुए रंगों को उम्र से जोड़ दिया गया है। सामान्य भारतीय मोहल्लों में ऐसी बहुत-सी वृद्ध स्त्रियाँ दिख जाएँगी जो सफेद या फीके रंगों की साड़ी में रंगों से दूर जीवन जीती हैं। आमतौर पर शादी या जश्न के माहौल में भी हमारे दिमाग में बुजुर्ग छवियाँ रंगीन कपड़ों से दूर ही रहती हैं। दूसरी तरफ जीवन के आखिरी पड़ाव पर रंग एक अहम भूमिका निभाने वाले कारक होते हैं। रंग अपने साथ ढेरों विवरण लेकर चलते हैं। रंग व्यक्ति के अनुभवों और उन तजुर्बों से भी जुड़े होते हैं, जिनके साथ जीवन बीतता आता है। प्रकृति को गौर से देखने पर यह महसूस होता है कि वहाँ बर्फ से ढके पहाड़ भी एक चमक लिए होते हैं या फिर आसमान में सैर को निकलने वाले बादल दूध और रौशनी से नहाते हुए उजले हो उठते हैं। प्रकृति कभी फीके रंगों की सलाह जीवन के लिए नहीं देती। फिर हमारे बुजुर्गों पर ये फीके रंग क्यों थोपे जाते हैं?

शरीर और उम्र

हमारी उम्र शरीर के साथ घनिष्टता से ठीक उसी तरह जुड़ी है जिस प्रकार हमारा स्वास्थ्य हमारे आहार से जुड़ा है। हमें आहार लेना ही होगा अगर हमें जीवन की तमन्ना है। ठीक इसी तरह वक्त के बढ़ने से हमारा शरीर भी उम्र में पकना शरू हो जाता है। बुजुर्ग होना जीवन और उर्जा के तिलिस्म के अचानक खत्म होने की क्रिया नहीं है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार कोई नया खरीदा हुआ उपकरण, हमेशा नया नहीं रहता, ठीक उसी तरह शरीर वक्त से परे हमेशा एक सा नहीं रह सकता। यही प्रकृति का नियम है, जो हर जीव और पदार्थ पर लागू होता है। इसे स्वीकार कर लेने से मानसिक जूझन कम हो जाती है। कुछ नियम अटल होते हैं। उनसे लड़ा नहीं जा सकता।

शरीर में समय के साथ होने वाले बदलाव सुखद नहीं होते हैं। उम्र अपनी एक निशानी छोड़ना चाहती है। सामान्य रूप से पीड़ा, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक साथ चलने लगती है। उदासी और अकेलापन भी घेरने के कई जाल बिछा देते हैं। रोना या खुश होना इत्यादि भाव जल्दी-जल्दी बदलने लगते हैं। नम्रता भी आनी शुरू हो जाती है, फिर चाहे वह सिकुड़ती हुई त्वचा में हो या स्वाभाव में। मृत्यु का भय घेरने लगता है। मृत्यु जो न दिखती हुई भी हरदम साथ में बनी रहती है। जीवन के प्रत्येक क्षण में हमारे साथ पक्के साथी की तरह रहते हैं। मृत्यु अंत है। उससे पहले शिथिलता के साथ शरीर जुड़ना शुरू हो जाता है। बुजुर्ग होना हमारी सक्रियता का धीमा हो जाना भी होता है। इसका उदाहरण अक्सर बुजुर्गव्यक्तियों द्वारा की जाने वाली शिकायतों में देखा जा सकता है। वे कई बार कहते हुए सुनाई देते हैं कि अब ज्यादा चल नहीं पाते, घुटनों में दर्द होता है, जल्दी थक जाते हैं, आदि। आँखों की रोशनी का मद्धिम होना भी एक दुखद दिक्कत है। हालाँकि आज के समय में इलाज की सुविधा मौजूद है फिर भी कई बार यह एक बड़ी पीड़ा होती है और व्यक्ति की निर्भरता किसी दूसरे पर बढ़ जाती है।

पारिवारिक संबंध

किसी ने कुछ साल पहले एक अनुभव साझा किया कि उनके यहाँ एक बेहद बुजुर्ग महिला, एक रोज अचानक गली में चारपाई डालकर रहने लगीं। इसके पीछे का कारण यह था कि उनके बेटे-बहुओं और बेटियों ने उनकी जिम्मेदारी लेने से साफ इंकार कर दिया था। यह अपने आप में दिल दहला देने वाला मामला था। गली में इस बात की बहुत चर्चा हुई कि वे क्यों बाहर पड़ी हैं? पर किसी ने भी उन्हें अपने घर में पनाह नहीं दी। बरसातों में उनकी स्थिति और दयनीय हो जाती थी। खाने-पीने का इंतजाम किसी तरह से हो जाता था या लोग उनको खाना दे आते थे। एक रोज भयानक सर्दी में वे सोई तो सुबह उठीं नहीं। उनकी मौत सर्दी लगने से हो गई थी। अनुभव बताने वाले व्यक्ति ने अंत में कहा- ''उस बुजुर्ग औरत की मृत्यु का मेरे बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैं उस हृदयविदारक घटना को भूल ही नहीं पाती हूँ।''

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि पुराने वक्त की कथाओं में व्यक्ति अपने जीवन के अंतिम चरण में जंगल की ओर चला जाता था। इसलिए भारत में जंगलों का अपना एक महत्व है। जंगल इंसानी जीवन लीला का अहम हिस्सा थे। जंगल वह जगह नहीं थी, जहाँ भंयकर पशु और जीव रहते हैं बल्कि वह जगह थी जो व्यक्ति को उसके अंतिम दिनों में बिना लिंग और जाति देखे पनाह देती थी। जंगल उसे जीवन से मुक्त करने की व्यवस्था देता था। लेकिन आज का समय तो ग्लोबल गाँव का है। वैश्वीकरण ने जंगलों को खत्म कर दिया है। गहराई से हमारी पारिवारिक व्यवस्था को प्रभावित किया है। हमने जंगलों को मुक्तिधाम की जगह विकास के महत्वपूर्ण साधन में बदल दिया है। अब हम बच्चों को यह बताते हैं कि पेड़ से क्या-क्या फायदे हैं, न कि पेड़ कैसे हमारे जीवन से जुड़े हैं। यह परिवर्तन बेहद बारीक है।

रिश्तों के फ्रेम में हमने कुछ बेहतर जीवन के चित्र खींचे हैं। बहुत कुछ पाने और जीने की तमन्ना में हमें वे सब चाहिए जिसकी पहले जरूरत नहीं होती थी। आदर्श परिवार के चित्र से अब बुजुर्ग लोगों के व्यक्तित्व कट चुके हैं या धीरे-धीरे काटे जा रहे हैं। हमने व्यक्ति को अब एक बोझ में तब्दील कर लिया है। देखभाल की जिम्मेदारी से मुक्ति की चाह में, संबंधों के व्यवहार में भयानक परिवर्तन हुआ है। पूंजीवाद के दिए हुए सपनों को हमने हाथों हाथ खरीदा है। उनमें रुपया, घर, गाड़ी, खुशहाली, तीज-त्यौहार से लेकर हर छोटी बड़ी चीज शामिल है। बस नहीं है कोई तो वे हमारे बुजुर्ग हैं, जो पूंजीवादी व्यवस्था में काम की कुंजी नहीं हैं। कुछ वर्षो तक बच्चों के लिए टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कार्टून कार्यक्रमों में बुजुर्ग छवियाँ अहम होती थीं। परन्तु हाल के वर्षो में इसमें कमी आई है। यह महीन बदलाव लोगों की नजर में नहीं है।

अनुभव और देखभाल

कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्था में छलांग लगाकर नहीं पहुँचता। जिंदगी के सफर में वह धीरे-धीरे बहुत से तजुर्बों को लेते हुए बढ़ता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में अनुभव को सम्मान की नजर से देखने के बर्ताव में कमी आई है। इसकी जगह मतलब परस्ती ने ले ली है। शहरी इलाकों में यदि पति-पत्नी दोनों कामकाजी हैं तो उनके लिए घर के बुजुर्ग 'केयरटेकर' की भूमिका में रहते हैं। ढेरों जिम्मेदारी उनके कन्धों पर रखी जाती हैं। लेकिन इसके बदले में उनको दिया जाने वाला पोषण न के बराबर होता है। इसके अलावा विदेशों में नए जीवन और करियर की चाह में गए युवा अपने पीछे बुजुर्ग माता-पिता को नौकरों के सहारे छोड़ कर वहीं बस जाते हैं। इसके बाद इस तरह पीछे छूटे हुए लोग अपराध का शिकार भी जल्दी हो जाते हैं। अपराध से पहले वे अकेलेपन का शिकार होते हैं। अक्सर स्वस्थ समाज की कल्पना में लोग अपने विचारों में रोजगार, सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि बुनियादी चीजों पर बहस करते हैं, पर कभी सुबह और शाम पार्कों में वक्त काटते हुए इंसानी समुदाय के बारे में नहीं सोचते जिनको तमाम तरह की परेशानियाँ घेरे रखती हैं। सवाल यही बनता है कि अपने बुजुर्ग लोगों को छोड़कर स्वस्थ समाज कैसे और किसके लिए तैयार किया जाएगा?

फलसफा

जीवन हर चीज पाने की दौड़ के अलावा भी बहुत कुछ है। हम चीजों में जीवन की सुख-सुविधा की खोज कर रहे हैं। वर्तमान समय में भागते-दौड़ते हुए समाज में यह वाजिब भी है। लेकिन कोरोना महामारी ने जिस तरह से हर उम्र के लोगों को घर में रहने पर मजबूर कर दिया है उसके कुछ नतीजे तो निकल ही रहे हैं। इस महामारी ने वक्त को धीमा कर दिया है। उसने नौजवान और सदा व्यस्त रहने वाले इंसानी समुदाय को कुछ बातें समझाने की कोशिश की है। जीवन चीजों के सहारे ही नहीं बीत सकता। उसके लिए अपने लोगों का साथ जरूरी है। 'थोड़ा है, थोड़े की जरूरत' वाले फलसफे के साथ व्यक्ति अपने रिश्तों के साथ गरिमामय जीवन जी सकता है। एक कहानी के मुताबिक किसी व्यक्ति को खुदा के दर्शन करने की धुन सवार थी। उसकी खातिर उसने पड़ाव में आने वाली हर चीज को नजरन्दाज किया और कायातोड़ मेहनत की कि खुदा के दर्शन कर के ही कुछ करूँगा। खुदा हाजिर हुए पर वह व्यक्ति रास्ते में इतना थक गया कि उसके दर्शन से पहले ही बेहोश होकर गिर पड़ा। हमें इस कहानी से यही समझने की जरूरत है कि हम प्रक्रिया में कहीं अपने लोगों को तो नहीं छोड़ते जा रहे। हमें धैर्य का परिधान पहनना ही होगा। कानों को सुनने की आदत डालनी होगी। न जाने कितनी कहानियाँ और अनुभव हमारे बुजुर्ग होते माता-पिता और अन्य संबंधियों के पास पड़ी हैं, जो अभी तक अनसुनी रह गई हैं।

****

''तोल-मोल के बोल''

चंदा यादव*

किसी ने ठीक ही कहा है कि -

''जीभ पर लगी चोट ठीक हो जाती है,
लेकिन जीभ से लगी चोट ठीक नहीं होती''

इससे सीधा तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने द्वारा कहे गए शब्दों के भावों की कीमत पता होनी चाहिए, क्योंकि शब्द भले ही आसानी से सामान्य अवस्था में कह दिए जाते हैं, परन्तु उनके भाव व प्रभाव लंबे समय तक अपना असर रखते हैं।

इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि ''जीवन सौंदर्य है, जिसका शृंगार शब्द है'' यदि हम शृंगार का प्रयोग सही जगह सही तरीके से करना जानते हैं तो आसानी से अपने जीवन के सौंदर्य को बढ़ा सकते हैं। साथ ही यह भी सत्य है कि आपकी वाणी से निकले हुए शब्द ही आपके भविष्य का रास्ता बनते हैं, यदि आप किसी को कड़वे वचन बोलोगे तो शायद ही ऐसा कोई सहनशील व्यक्ति होगा जो इसके उत्तर में आपको मीठे शब्द भेंट करे।

आपके द्वारा बिना तोल-मोल के कहे गए शब्द सकारात्मक व नकारात्मक दोनों हो सकते हैं। सकारात्मक विचार को सामने वाला व्यक्ति अपने जीवन में लागू करता है तथा धीरे-धीरे शब्दों के भाव से प्रभावित होता है। परन्तु किसी के द्वारा कहे गए नकारात्मक शब्द आपके मन, मस्तिष्क में ऐसे भाव पैदा करते हैं कि आप न चाहते हुए भी उस शब्द को याद रखते हैं और उस व्यक्ति को भी। यानी व्यक्ति द्वारा कहे गए शब्द हमें ज्यादा प्रभावित करते हैं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने शब्दों की कीमत व उनके भावों का अंदाजा लगाकर तथा उन्हें तोल-मोल कर ही प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि एक निश्छल प्राणी जो अपने शब्दों को सहजता से व तोल-मोल के प्रयोग करता है, वह अपने बोल से विरोधियों को भी स्पर्श कर सकता है।

आप भले ही कुछ शब्द बिना विचार किए और उसका परिणाम सोचे बोले दे पर श्रोता आपके शब्दों को सुनता भी है, समझता भी है और इससे आपके शब्दों का व्यक्ति के जीवन पर गहरा असर भी पड़ता है, जिसे आप चाहकर भी परिवर्तित नहीं कर सकते, बल्कि आपके द्वारा कहे गए शब्दों के भाव समय के साथ गहरे होते चले जाते हैं। इसलिए बुद्धिमत्ता इसी में है कि पहले अपने शब्दों को चुने, उनको टटोले फिर तोल-मोल के उनका प्रयोग करें।

प्रत्येक व्यक्ति हमेशा अच्छा व्यवहार करेगा ऐसा नहीं है, यह बात भी स्वीकार करनी चाहिए। अपने शब्दों की कीमत समझना और उनका तोल-मोल कर प्रयोग करना ही व्यक्ति का गौरव है जो उसे दूसरों से अलग बनाता है। ऐसे व्यक्ति संयमशील और दूरदर्शी होते हैं और उनमें सोचने व समझने की दृढ़ शक्ति होती है। साथ ही इनके शब्द सकारात्मक रूप से लोगों को प्रभावित करते हैं और उनके जीवन में प्रेरणा बनते हैं। ऐसे लोगों से मिलकर सकारात्मक विचार आते हैं, जिससे लोग अपने जीवन में भी परिवर्तन को आसानी से अपना पाते हैं।

---

* *सहायक प्रोफेसर, एनसीडब्ल्यूईबी, दिल्ली विश्वविद्यालय।*

शब्दों से ही व्यक्ति की सुंदरता का ज्ञान होता है। शब्द ही व्यक्ति का व्यक्तित्व बताते हैं और शब्द ही व्यक्ति का वजूद बनाते हैं। हम जीवन में कभी उन व्यक्तियों की परवाह नहीं करते जो बिना सोचे-समझे अपने शब्दों के भावों को व्यर्थ करते है और इनकी अहमियत नहीं समझते, बल्कि हम जीवन में उन व्यक्तियों को सुनना पसंद करते हैं जिनमें संयम, साहस, संतुष्टि व अपने शब्दों के प्रति संवेदनशीलता होती है। ऐसे व्यक्ति के शब्द आसपास के लोगों के लिए एक दिशा बनते हैं। इसलिए अपने कीमती शब्दों को व्यर्थ न करें बल्कि उन्हें एक पथ प्रदान करें जिसमें उनका महत्व हो और आपके शब्दों को सुना जाए, समझा जाए, आत्मसात किया जाए। क्योंकि मानव जीवन में शब्द ही वह महत्वपूर्ण अस्त्र है, जिसका प्रयोग कर व्यक्ति एक-दूसरे से संचार स्थापित करते हैं, एक-दूसरे के हाव-भाव को व भावनाओं को समझते हैं।

हम समाज में कुछ ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों को देख सकते हैं, जिन्होंने सकारात्मक व प्रभावी शब्दों से लोगों का जीवन बदला, लोग भले ही उनको भूल गए हों परन्तु उनके द्वारा कहे गए शब्द आज भी मस्तिष्क में कौंधते हुए नवस्फूर्ति का संचार करते हैं।

कई बार किसी व्यक्ति द्वारा कहे गए कुछ शब्द दूसरे व्यक्तियों को इतना प्रभावित कर देते हैं कि उनका जीवन बदल जाता है। क्योंकि उन शब्दों के जुड़ाव से लोगों को ऊर्जा मिलती है, जो उनके जीवन में नए भाव पैदा करती है।

एक बार एक व्यक्ति परेशान होकर अपने एक मित्र के पास गया और दूसरे मित्र की खूब निंदा की। थोड़ी देर बाद उसे अपने द्वारा कहे गए शब्दों का एहसास हुआ। तब वह वापस मित्र के पास गया और क्षमा मांगते हुए बोला, मित्र जो मैंने बोला उसका एहसास है मुझे। मित्र ने मुस्कुराते हुए कहा, मेरा एक कार्य करोगे, मुझे कुछ फूलों की आवश्यकता है, ले आओ। वह व्यक्ति ले आया। उसके मित्र ने पुनः कहा की प्रत्येक फूल की पंखुड़ियों को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़ दो। उस व्यक्ति ने ऐसा ही किया। फिर मित्र ने कहा मित्र अब मुझे यह नहीं चाहिए। आप इन्हें जोड़ दो और वापस पेड़ पर लगा आओ। व्यक्ति ने आश्चर्यचकित होकर जबाव दिया क्या मजाक है, ऐसा बिल्कुल नहीं हो सकता है। तब उसके मित्र ने कहा - समझदारी और बेवकूफी में यही अंतर है। समझदार बोलने से पहले सोचकर बोलता है और बेवकूफ बोलने के बाद सोचता है। अतः जैसे फूलों को फिर से जोड़ना मुमकिन नहीं है, वैसे ही अपने द्वारा कहे गए शब्दों को वापस लेना भी मुमकिन नहीं है, चाहे बाद में उस पर आपको कितना भी पछतावा हो। इसलिए आपकी समझदारी इसी में है कि आप पहले ही अपने शब्दों का प्रयोग तोल-मोल कर करें।

अतः सही भावों से कहे गए शब्दों की गरिमा हमेशा बनी रहती है, वहीं आपके द्वारा कहे गए कड़वे, कसैले शब्द लोगों की महत्त्वाकांक्षा को मार देती है, उनका जीवन शून्य की तरफ जाने लगता है और ऐसे शब्द इंसान कभी नहीं भूलता। बोलने का व्यवहार व कला साथ ही तोल-मोल कर बोलना व्यक्ति के व्यवहार की एक कुशलता है और इसका ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए क्योंकि इससे उसका नजरिया झलकता है।

****

संघर्ष जीवन का हिस्सा है

ममता कुमारी*

यह सामान्य सी बात है कि लोग जीवन में किसी मनुष्य का संघर्ष न देखकर उसकी सफलता को देखते हैं अर्थात उसकी कामयाबी को और शायद इसलिए मनुष्य हर मुश्किल का सामना करते हुए अपनी मन्जिल तक पहुँचने की पूरी कोशिश में लगा रहता है। लेकिन फिर भी कभी-कभी परिस्थितियाँ संघर्षो के अनुकूल नहीं हो पाती और कई बार असफल भी होना पड़ता हैं। असफलता मन में निराशा बन कर बैठ जाती है, जिसके कारण मन में हलचल मची होती है। एक ऐसी हलचल जो मनुष्य की बुद्धि और धैर्य का नाश कर उसे गलत-गलत विचार करने पर मजबूर करती है और मनुष्य चल पड़ता है... मृत्यु समान अवसाद की राह पर। लेकिन कुछ मनुष्य बड़े बुद्धिवान और धैर्य धारण करने वाले होते हैं। असफल होने पर भी अपना विश्वास बनाए रखते हैं और खुद के साथ-साथ अपने परिवार को सम्भालते हुए मन्जिल तक पहुँचने का दूसरा उपाए सोचते हैं। ये सम्भव भी तो नहीं कि मनुष्य जो चाहे, उसे वही मिल ही जाए। क्या पता उसे उससे भी बेहतर मिलेगा। इसलिए यह सोच मनुष्य को अवश्य रखनी चाहिए कि वो जो चाहता हो और उसे वह न मिले तो अत्यधिक निराश होने की जगह यह सोच कर धैर्य धारण करे कि उन्हें उससे भी बेहतर मिलेगा।

इस प्रकार ज्यादा दुःखी होने के स्थान पर पूरे सच्चे मन से अपना कर्म करने में आसानी होगी और जिन्दगी का संघर्ष भरा सफर भी आसान लगने लगेगा। जरा गौर से सोचिए। एक माँ जब अपने बच्चे के लिए स्वेटर बुनती है, तो उसकी बुनावट में भी कमी आ ही जाती हैय कभी एक फंदा छूट जाता है, कभी स्वेटर में बने डिजाइन सही से नहीं बैठ पाते और तो और कभी-कभी स्वेटर की नाप भी छोटी-बड़ी हो जाती है। फिर भी माँ स्वेटर बुनना नहीं छोड़ती है और अंत में निरन्तर प्रसास से एक सुंदर सा स्वेटर तैयार कर ही लेती है। ठीक इसी तरह मनुष्य के छोटे-बड़े सपने और मुकाम होते हैं, जो कभी तो थोड़ी मेहनत से ही पूरे हो जाते है और कभी-कभी जी जान लगाकर मेहनत करने पर भी पूरे नहीं होते। क्योंकि उस मुकाम के रास्तें कठिन होते हैं, जो कि निरन्तर संघर्ष एवं प्रयास से सफलीभूत होते हैं।

यह बात भी सत्य है कि कभी-कभी सारे सपने पूरे नहीं होते पर कुछ सपने ऐसे होते है जिन्हें मनुष्य जी जान लगाकर पूरा करता है और वो सपने पूरे भी होते हैं। परन्तु यदि कभी-कभी किसी छोटी सी वजह से कोई अहम सपना पूरा नहीं हो पाता है, तो उसके कारण मानव को पूरी जिन्दगी से मुँह नहीं मोड़ना चाहिए और प्रयास करते रहना चाहिए। नहीं तो एक ऐसे सपने को पूर्ण करते हुए आगे बढ़ना चाहिए जिसका जुड़ाव पहले वाले सपने से हो, राहें अनेक होती हैं। अतः मनुष्य को निराश होने के बजाय एक कदम आगे बढ़ने की जरूरत होती है, क्योंकि कोई भी मंजिल मनुष्य के जीवन के संघर्षों का ही हिस्सा होती है, वो उसकी पूरी जिन्दगी नहीं होती।

****

* छात्रा, एम.ए., एनसीडब्ल्यूईबी, दिल्ली विश्वविद्यालय।

कोरोना काल के संकट की चुनौतियाँ और सीख

डॉ. तरुण गुप्ता*

भारत और विश्व के लिए अब तक साल 2020 बहुत बुरा बीता है। हर स्तर पर इसने घाव ही दिए हैं। इस वैश्विक मंदी की तरफ बढ़ते दौर में कोरोना का घाव इतना गहरा है कि कई देशों की अर्थव्यवस्थाएँ चौपट हो चुकी हैं। बेरोजगारी और भुखमरी बहुत ज्यादा बढ़ी है। कोरोना से पहले का भारत जो विकसित होने का सुनहरा ख्वाब संजो रहा था, कोरोना के कारण अपनी अर्थव्यवस्था और सकल घरेलू उत्पाद को ऋणात्मक होने से बचाने की जद्दोजहद कर रहा है। इस बीमारी ने भारत को कम से कम बीस साल पीछे धकेल दिया है। कई अर्थशास्त्रियों का मानना है कि इस समय वैश्विक अर्थव्यवस्था की हालत 1929 की वैश्विक आर्थिक मंदी से भी बुरी है। सरकार के आर्थिक पैकेज से सिर्फ स्टॉक मार्केट में ही सुधार दिखा है। तकनीकी रूप से बाजार को चाहे कितना बढ़ा ले पर उसके फंडामेंटल बेहद कमजोर हैं, यह किसी से छिपी बात नहीं है। दरअसल अर्थव्यवस्था तब तक पटरी पर नहीं आ पाएगी, जब तक हम इस बीमारी की वैक्सीन या दवा नहीं खोज लेते।

भारत ने शुरू में इस बीमारी का मुकाबला करने में लॉकडाउन का सहारा लिया। सोशल डिस्टैंसिंग का सहारा लिया। और एक नजर में यह बहुत अच्छे फैसले थे। पर जब कमाई के साधन छिन जाएँ, तो गरीब तबके के लोग क्या खाएं और अपने बच्चों को क्या खिलाएँ। इस बीमारी के बीच सबसे ज्यादा बुरी हालत से प्रवासी मजदूर गुजरे, लाखों की संख्या में मजदूर अपने बीवी, बच्चों सहित नंगे पैर सैंकड़ों मील का सफर तय करने पर मजबूर हुए। लॉकडाउन के दौरान प्रवासी मजदूरों के पलायन को दूसरा विभाजन तक कहा गया और सच ही है, हमारी पीढ़ी के लोग जिन्होंने विभाजन के सिर्फ किस्से सुने थे,उसने उस भयावहता का पहली बार अनुभव किया। हम इतने असहाय कभी नहीं थे कि कोई मदद चाहे और हम घर में दुबके सिर्फ उसकी हालत पर दुःख व्यक्त करते रहें। संभवतः ये दौर हमारी पीढ़ी का सबसे बुरा दौर है। कोरोना काल के संकट में हम अमानवीयता की पराकाष्ठा भी साथ ही देख रहे है। इसके लिए किससे सवाल करें - सरकार से, मीडिया से या फिर खुद से। क्योंकि दोषी तो हम सब ही हैं। हमने प्रवासी मजदूरों को बिना खाए पीए, थके हारे, कभी बच्चों को तो कभी सूटकेश को कंधों पर लादे जाते हुए देखा है। हम एक ओर विकसित राष्ट्र बनने का सपना देखते हैं और दूसरी ओर हम अपने मजदूरों और उनके परिवारों का ध्यान नहीं रख पाते। क्या कोई राष्ट्र अपने हाशिये के समाज को छोड़कर विकसित हो सकता है। अगर ऐसे विकसित हो भी जाए तो क्या वह विकास वास्तविक विकास माना जाएगा।

सवाल सरकार से भी बनता है कि जब लॉकडाउन किया गया तो क्या सरकार को इस समस्या का बिल्कुल अंदाजा नहीं था कि रोज कमाने और रोज खाने वालों के जीवन पर कितना बड़ा संकट आएगा। अगर पता था तो सरकार की क्या नीति रही। कैसी विडंबना है कि हम अपने ही देशवासियों के साथ परदेसियों जैसा सलूक कर रहे हैं। वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था के जो हालात हैं, उसके लिए सिर्फ हम भारतीय ही नहीं बल्कि कोई भी देश तैयार नहीं था। हालांकि कोई भी आपदा या परेशानी बता कर नहीं आती है। अगर सूचित करेगी तो परेशानी थोड़े ही होगी। लेकिन इस आपदा की दस्तक हमें मिलने लगी थी। तब भी हमने जो कदम उठाए वो पर्याप्त नहीं थे। ये सरकार और हम सबके के लिए एक चुनौती थी और कहना न होगा कि सरकार और हम इस चुनौती को संभालने में विफल रहे। कुछ तो जागरूकता की कमी और कुछ रोजी-रोटी का संकट।

सोचिये जरा, छोटे-छोटे बच्चे, बीमार बूढ़े, गर्भवती महिलाएं बोझा ढोए चली जा रही हैं। नन्हें बच्चों तक जिन्हें बोझ का मतलब तक नहीं मालूम बोझा लादे, बिना चप्पलों के चले जा रहे हैं। इस दौरान जैसी तस्वीरें अखबारों और मीडिया में आई हैं, वो अमानवीय मालूम होती हैं। किसी माँ ने अपने एक बच्चे के सामने दूसरे बच्चे को जन्म दिया और चल बसी, बच्चा उसकी छाती के पास बिलख रहा है। कोई बच्चा किसी अटैची या सूटकेस पर औंधा पड़ा सामान की तरह खींचा जा रहा है। कोई मजदूर रास्ते में पड़े कूड़े के ढेर में बचे हुए खाद्यसामग्री को खाने को मजबूर है, ये सब तस्वीरें बहुत वीभत्स हैं, साथ ही सवालिया निशान हैं हम पर। हाईवे पर कितने मजदूर सड़क दुर्घटना में मारे गए, रेल की पटरियों पर उनके शव क्षत-विक्षत हालत में टुकड़ों में बिखरे पड़े हैं। और साथ में पड़ी हैं रोटियाँ। इन रोटियों के लिए ही

* सहायक प्रोफेसर, शिवाजी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)।

वो और उनका परिवार यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ पलायन करने को मजबूर हैं। उनके अपने राज्य उन्हें घुसने नहीं दे रहे। इस महामारी ने बहुतो की कलई खोलकर रख दी है। हमने अपने भीतर के भारतीयता को ही नहीं बल्कि इंसान को भी मार दिया है, जिसके लिए दूसरे का दर्द अपना दर्द ना बने वहाँ कैसी इंसानियत।

कोविड 19 बहुत सी समस्याओं को लेकर आया। कोई संस्थान, बैंक, इंडस्ट्री, सरकार, मीडिया न तो इसके लिए पहले से तैयार था और न ही किसी को यह पता था कि यह लड़ाई इतनी लंबी चलने वाली है। सबको लगा कि कुछ दिन बाद सब ठीक हो जाएगा। पर एक लॉकडाउन के बाद भी जब केस बढ़ते चले गए तो लोगों की जमापूंजी खत्म होने लगी, राशन की दिक्कतें आने लगी, लोगो का धैर्य जवाब दे गया। सरकारों ने छुटपुट कोशिशें कीं जैसे खाना-बांटना, पैसे-ट्रांसफर कर फौरी राहत देना। पर ये सिर्फ कुछ ही दिनों में खत्म हो गया। ऐसे समय में कब तक वे घर में खुद को बाँधे रखते। उन्होंने अपने गाँव और परिवार वालों के पास जाना ठीक समझा होगा। सोचा होगा मरें तो कम से कम अपने घर परिवार वालों के साथ। अपने ही मुल्क में वे खुद को बेगाना महसूस करने लगे।

इस कोरोना काल में बेरोजगारी, जमापूंजी की समाप्ति, सैलरी न मिलना कोढ़ में खाज बन गए। सरकार ने गरीब तबके के लोगों की सहायता करने के लिए कई बार लोगों से अपील की और कहा कि आप किसी का वेतन न रोकें। पर सरकार ये भूल गई कि वेतन कोई तब देगा जब उसको खुद वेतन मिले। बड़ी-बड़ी इंडस्ट्री का एक और दो तिमाही का परिणाम बता देगा कि उन्हें कितना बड़ा घाटा हुआ है। मारुति जैसी कंपनी ने घोषित किया कि मार्च में उनकी एक भी गाड़ी नहीं बिकी। ये खबर उद्योगों की स्थिति को समझाने के लिए काफी है। बड़े उद्योग तब भी कई महीनों तक सैलरी दे सकते हैं, किन्तु छोटी फैक्ट्रियों का क्या। सरकार का कहना है कि उसने करीब बीस लाख करोड़ का पैकेज दिया पर वो निचले तबके तक पहुँचा हो, ऐसा नहीं दिखता। जमीनी स्तर पर हालात बेहद खराब हैं। बैंकों का एनपीए बढ़ता जा रहा। यस बैंक का संकट किसी से छिपा नहीं है। सरकारी बैंकों - भारतीय स्टेट बैंक और पंजाब नैशनल बैंक की हालत भी कोई बहुत अच्छी नहीं है। ये सरकार की नई चुनौतियाँ हैं, जो आने वाले समय में उभरेंगी।

दरअसल हमें एक कमेटी बनानी चाहिए थी जो प्रधानमंत्री और सभी 30 मुख्यमंत्री का मंडल होता। कोविड-19 से बचने के लिए जो भी सुझाव किये जाते वो सभी इस समिति के सुझावों से संभव हो सकते थे। हमें दल वैविध्य को दरकिनार कर एकजुट होकर इस बीमारी से लड़ना चाहिए था। सभी राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रियों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग कर बैठक करनी चाहिए थी, वो भी कितनी की गई ये सब जानते हैं। हालत ये हो गई कि कई राज्यों के मंत्री और उनका स्टाफ इस बीमारी की चपेट में आ गया। और यह देखना भी दुखद है कि ऐसे समय में भी कुछ मंत्री और नेता फिल्म सैलिब्रिटी के साथ पार्टियां कर रहे थे और उसमें शरीक हो रहे थे। इससे जनता के बीच बहुत बुरा संकेत जाता है।

इस संबंध में विश्व स्वास्थ्य संगठन के निर्देश भी बहुत स्पष्ट नहीं थे। विश्वस्वास्थ्य संगठन से मिलने वाले समय-समय पर परस्पर विरोधी दिशा-निर्देशों के कारण हमारी सरकार की कोविड सम्बन्धी नीतियाँ स्वाभाविक रूप से विरोधाभास युक्त होती गयीं। यही कारण रहा कि उनके पास इससे निपटने का कोई कारगर एवं असरदार तैयारी नहीं थी। पहले सरकार ने कहा कि कोविड-19 से लड़ने के लिए एन 95 मास्क काफी उपयोगी है। तब केस हजार में थे। जब केस लाखों में हो गए तो कहने लगे कि एन 95 मास्क बहुत उपयोगी नहीं है। पहले कहते थे कि हवा से ये वायरस नहीं फैलता। अब कह रहे हैं कि हवा से भी यह वायरस फैल सकता है। इस विरोधाभास ने कई अफवाहों को भी जन्म दिया। लोग बातें करने लगे और न्यूज चैनल भी इन अफवाहों पर गौर करने लगे। कुछ महानुभावों ने कहा कि गर्मियों में यह वायरस खत्म हो जाएगा, पर देखा गया कि जैसे जैसे गरमी बढ़ी असर और फैलाव भी बढता गया। तथापि विश्वस्वास्थ्य संगठन के परस्पर विरोधी सुझावों के बावजूद हमारी सरकार ने काफी हद तक स्थितियों को संभालने की पुरजोर कोशिश भी की।

कोरोना काल का सबसे दुखद पहलू यह रहा कि जो बीमारी विदेश से आई है, जो हवाई जहाज से आई है, जिसे बड़े बड़े धनाढ्य लेकर आए हैं। उसकी कीमत झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले बेहद गरीब, रोज कमाने रोज खाने वाले कामगार चुका रहे हैं और तब भी सारा आरोप इन्हीं पर मढ़ दिया जाता है कि यही लोग बीमारी फैला रहे हैं। कैसी विडंबना है कि हम इस पर भी राजनीति कर रहे हैं। अमीरों को अस्पताल मिल जाएंगे पर गरीब सोचने लगा कि यहाँ रहकर तो वैसे भी मरना हैं। हमारी सुध कौन लेगा। मेरे बीवी बच्चों को कौन डाक्टर बिना पैसों के देखेगा। बिना खाए हम कितने दिन जिंदा रहेंगे। इसलिए अपनी जान जोखिम में डाल वो पैदल ही अपने गाँवों की ओर निकल पड़े। इस संकट के समय गुरुद्वारों ने मानवता दिखाते हुए अपने पंडाल और द्वार इन मजदूरों के लिए खोल दिए। रास्तों में खाना बाँटने और मदद करने में सिक्ख कौम ने जो जज्बा दिखाया उसे बाकि धर्म भी सीख सकते हैं। कोरोना काल के संकट में हमारा खुद से परिचय हुआ। ऐसे समय में सरकार, मीडिया और हमें मानवता के हक में खड़ा होना चाहिए, ये बुरा वक्त भी निकल जाएगा पर हमारे काम याद रखे जाएंगे।

****

युवाओं में श्रद्धा, विश्वास और जागरूकता

पूनम तंवर*

''तोड़ देंगे हम रूढ़ियों को, एक नया जहाँ बनाएँगे, युवा हैं हम भारत के, इसे आगे बढ़ाएँगे, देखेंगे जोर कितना है तूफा की भुजाओं में, तोड़ कर सब बंधनों को हम अमर हो जाएँगे।''

इतना अधिक जोश, इतनी उमंग और इतना उत्साह केवल युवाओं में ही हो सकता है। जोश, उत्साह और उमंग से परिपूर्ण युवाओं को सन्मार्ग पर पग रखने की प्रेरणा देने के लिए अच्छे मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। जो इस प्रकार से उनकी मदद करें कि वे भटकाव से बचते हुए अपना जीवन श्रेष्ठ बनाएँ।

शिक्षा

शिक्षा के माध्यम से हम युवाओं को सचेत करेंगे कि यदि उनके साथ या उनके आस-पास अगर कुछ गलत हो रहा हो तो वे उसे अनदेखा न करके उसका विरोध करें और बेझिझक अपनी समस्या को सुलझाने में सक्षम हो तथा दूसरों से साझा कर सके। नैतिक शिक्षा के माध्यम से समाज को जागरूक किया जाना चाहिए, जिससे लोग सही गलत की पहचान कर सकेंगे और युवाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराधों में कमी आएगी। शिक्षा अपराधों को रोकने का सही व सार्थक मूल्य है।

संस्कार ही जीवन का आधार

संस्कार ही जीवन के नींव होते हैं। संस्कारों की कमी समाज में बढ़ते अपराधों का प्रमुख कारण है, जिस प्रकार एक श्रेष्ठ कार्य कुल, समाज तथा राष्ट्र को आसमान की ऊँचाईयों तक ले जाता है वहीं एक नीच कार्य पूरे समाज व राष्ट्र को गहरे अंधकार की तरफ धकेल देता है, जहाँ गहरे सन्नाटे के सिवा आशा की कोई किरण नजर नहीं आती। ऐसे में एक अमूल्य वरदान रूपी जीवन भयानक अभिशाप जैसा लगने लगता है। युवाओं का सही मार्गदार्शन करने में संस्कारों का विशेष महत्व है।

कानूनों का सख्ती से पालन

यदि हम और आप वास्तव में चाहते हैं कि अपराध रुक जाएँ तो हमें हमारे समाज तथा सरकार के द्वारा बनाए गए कानूनों का सख्ती से पालन करना होगा। सख्त कानून अपराधियों के मन में डर का कारण बनेगा। जिससे वे कोई भी अपराध करने से पहले हिचकिचाएँगे। यदि कोई भी अपराध होते ही उसके खिलाफ तुरंत कार्यवाही की जाए तो आए दिन होने वाले अपराधों का विरोध किया जा सकता है, उन्हें जड़ से खत्म तो नहीं परंतु कम अवश्य किया जा सकता है। यदि अपराधों को खत्म करने की जिम्मेदारी भारतीय युवाओं को दे दी जाए तो वो दिन दूर नहीं जब भारत एक अपराध मुक्त देश कहलाएगा।

* *प्राचार्या, द हॉरिजन इंटरनैशनल स्कूल, पानीपत, हरियाणा।*

रोजगार

हम सभी जानते हैं कि समाज में व देश में बढ़ती बेरोजगारी है। युवा पीढ़ी शिक्षित होने के बावजूद सही रोजगार न मिलने के कारण भटक रही है। जैसा कि कहा भी गया है ''खाली दिमाग शैतान का घर''। यदि सभी को उनकी योग्यता के अनुसार उचित रोजगार उपलब्ध हो तो युवा भटकाव से बचकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो अपने जीवन को सार्थक करेंगे। ऐसा होने पर वे लिंग भेदभाव के दायरे से बाहर निकलेंगे तथा एक-दूसरे का सम्मान करेंगे। वास्तव में हम ऐसा ही समाज व देश बनाना चाहते हैं।

पुरुषप्रधान समाज

महिलाओं के खिलाफ बढ़ते अपराधों का एक मुख्य कारण हमारा पुरुष प्रधान समाज भी है। कुछ परिवारों में आज भी घरेलू हिंसा होती है। यदि पुरुष प्रधान समाज ये समझे कि महिलाएँ भी समाज का बराबर का हिस्सा हैं और उन्हें भी समाज में बराबर का अधिकार मिलना चाहिए। ऐसा करके हम परिवार समाज व देश को अपराध मुक्त बनाने में अपना सहयोग दे सकते हैं, क्योंकि यदि युवा अपने परिवार में माँ, बहन, बेटी का सम्मान करेंगे व देखेंगे तो उनकी नारी जाति के प्रति कुदृष्टि सम्मानपूर्ण हो जाएगी। यदि ऐसा हुआ तभी हम वास्तविक रूप से अपनी युवा पीढ़ी को एक सुनहरा कल दे पाएँगे।

आत्म-सुरक्षा

यदि स्कूली पाठ्यक्रम में शिक्षा के साथ-साथ आत्मसुरक्षा सम्बंधी शिक्षा को भी शामिल किया जाए तो हम अपनी युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर तथा सही निर्णय लेने योग्य सक्षम बनाने में कामयाबी हासिल कर सकते हैं। यदि युवा वर्ग आत्मनिर्भर होगा तो वो अपने साथ-साथ दूसरों की सुरक्षा का दायित्व भी उठा सकते हैं। यदि युवा वर्ग अपने देश व समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरी निष्ठा व पवित्रता से निभाएगा तो भारत को फिर से विश्व गुरु बना सकता है।

अभिभावकों का योगदान

अभिभावक यदि समय-समय पर अपने बच्चों को उनके लक्ष्य तक पहुँचने में उनकी उचित मदद करें तो उनको उनके लक्ष्य को निर्धारित करने में मदद होगी। वे अपने जीवन की सही दिशा पहचान कर भटकाव से बचेंगे। यदि अभिभावक अपने बच्चों की समस्या को सुनकर उसे दूर करेंगे तो युवा वर्ग हर निर्णय को पहचानने में कारगर सिद्ध होगें।

''बड़ों के विचारों को सुनो और दो सम्मान अनमोल हैं
उनके अनुभव, जो बनाएँगे तुम्हें सबसे महान''

उपसंहार

अगर हमें सही मायने में समाज में बदलाव लाना है तो इस विषय में सिर्फ सरकार पर निर्भर न होकर हम सभी को एकजुट होकर सहयोग करना होगा। तभी हम 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओं' के नारे को सार्थक कर पाएँगे और अपने समाज व देश को अपराध मुक्त कर पाएँगे।

****

जैनेन्द्र और सुभद्रा कुमारी चौहान की रचनाओं में स्त्री-विमर्श

शीतल कुमारी*

जैनेन्द्र कुमार और सुभद्रा कुमारी चौहान दोनों समकालीन रचनाकार हैं, दोनों व्यापक संवेदना के रचनाकार हैं। दोनों विशेष प्रतिभा के धनी हैं। दोनों ने अपने-अपने ढंग से 'स्त्री मुक्ति' के प्रश्नों को उठाया है। बस फर्क इतना ही है कि एक पुरुष रचनाकार है और एक स्त्री रचनाकार है। जहाँ जैनेन्द्र कुमार की रचनाओं में 'स्त्री मुक्ति' के प्रश्नों को उठाकर भी स्त्री के प्रति सहानुभूति का आभास होता है, वहीं दूसरी ओर सुभद्रा कुमारी की रचनाओं में 'स्त्री मुक्ति' का प्रश्न स्वानुभूति का प्रश्न है। एक ने अनुभव को उकेरा है तो दूसरे ने भोगे हुए यथार्थ को। यहीं से सहानुभूति और स्वानुभूति का प्रश्न हमारे सामने खड़ा हो जाता है।

फिर भी जैनेन्द्र कुमार हिन्दी कथा-साहित्य की दुनिया में पहले लेखक हैं, जिन्होंने स्त्री-पुरुष संबंध को आधुनिकता की दृष्टि से देखने और पेश करने का काम किया है। जिस समय कथा-संसार में प्रेमचंद जैसा प्रभावी और युगप्रवर्तक कथाकार मौजूद हो, उस समय एक अलग राह की प्रवर्तन करते हुए स्वयं को स्थापित करना एक असाधारण काम है। जैनेन्द्र ने यह कारनामा किया है, इसलिए आज भी स्मरण में है। जैनेन्द्र ने स्त्री पात्रों के माध्यम से स्त्री की पीड़ा सामने लाकर इसके माध्यम से समाज को समझाने की कोशिश की है। ध्यान देने वाली बात यह है कि जैनेन्द्र ने यह काम आज से लगभग अस्सी वर्ष पहले किया है, तब न तो देश आजाद था, और न ही समाज में स्त्री अधिकारों के प्रति जागरूकता और सजगता ही थी।

अब सोचने वाली बात तो यह है कि जब उस समय 'स्त्री अधिकारों' के प्रति जागरूकता नहीं थी तो सुभद्रा कुमारी में इतनी जागरूकता कहाँ से आयी? सुभद्रा इतनी साहस कहाँ से लायी कि वह प्रथम सत्याग्राही नारी के रूप में नागपुर में बंदी बनाई जाती हैं। सन् 1923 तथा 1942 में दो बार ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ बगावत करते हुए जेल भी जाती हैं। जिन्दगी अपने शर्तों पर जीती हैं। जीवन के सभी फैसले स्वयं लेती हैं। सुभद्रा कुमारी की तरह ही इनकी स्त्री-पात्र बहुत साहसी है।

अब अगर प्रश्न पर बातचीत की जाए तो 'तुलनात्मक अध्ययन' की दृष्टि से यहाँ जैनेन्द्र कुमार की बहुचर्चित कहानी 'एक रात' की तुलना सुभद्रा कुमारी की कहानी 'वेश्या की लड़की' के साथ किया जा सकता है। दोनों कहानियां अलग-अलग परिवेश में लिखी गई हैं, पर स्त्री-पीड़ा, स्त्री-संघर्ष की दृष्टि से एक जैसी लगती हैं। 'एक रात' कहानी में नायिका प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व में फँसी रहती हैं और अंत तक निकल नहीं पाती है। एक रात कहानी की नायिका अपने पति से कहती है कि ''आज मुझे पता चला है कि अपना सब कुछ मैं तुम पर नहीं वार चुकी। भीतर ही भीतर कुछ बच गया था जो आज देखती हूँ, तुम्हारे चरणों में अर्पण नहीं कर सकी हूँ। मैं तुम्हें धोखा देती रही। तुमसे पाती सबकुछ रही, देने में चोरी करती रही। मैं पतिव्रता नहीं हूँ। आज ही मुझे मालूम हुआ है कि मैं पूरी तरह समर्पिता नहीं हूँ।'' इस प्रकार वह दो टूक अपने पति से कह देती है कि ''मेरे दिल में एक कोना अब भी बचा हुआ था, जहाँ तुम नहीं थे, कोई और था।'' सुदर्शना स्वेच्छा से अपने पति को सारी सच्चाई बता देती है, ठीक 'त्यागपत्र' की 'मृणाल' की तरह जबकि उसका पति इन सब बातों से बेपरवाह नशे में चूर है।

'एक रात' कहानी कुछ इस प्रकार है कि कहानी की नायिका सुदर्शना 'जयराज' नामक युवा नेता से प्रेम करती है। किंतु उसका विवाह जयराज से नहीं हो पाता। जैसे की जैनेन्द्र की सभी रचनाओं में देखा जा सकता है। सुदर्शना अपने पति के साथ

* शोधार्च्छात्रा, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

जीवन काट रही होती है। तभी उसका पूर्व प्रेमी उसकी पसंद जयराज से उसका सामना होता है और उसके अंदर दबा प्रेम जागृत होने लगता है। सुदर्शना को अपराध-बोध होने लगता है और इसी अपराध-बोध में वह अपने पति को सच्चाई बता देती है। उसके बाद जो होता है वह बहुत सहज नहीं जान पड़ता क्योंकि उसका पति उसे मारता-पीटता नहीं है। वह तो कहता है- ''मैं नहीं समझता आत्मा, धर्म, सदाचरण। मैं समझता हूँ प्रेम, सुदर्शना मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ।'' पति में एकाएक परिवर्तन होना प्रेम की स्वीकृति करना पति के प्रति सहानुभूति दिखाना, यही जैनेन्द्र, गाँधीवादी जैनेन्द्र का सत्याग्रह है। पति का कहना है- ''सुदर्शना छूटने और छोड़ने की बात करोगी तो मेरा दिल अपने बचाव में कुछ तो करेगा ही।.... तुमपर पतिव्रता का कोई दबाव नहीं, कोई बोझ नहीं।'' तब सुदर्शना कहती है, ''स्वामी प्रतिदान में चूकना मुझसे हुआ है, तुम्हारा प्रेम वह है, जो मुझे रोकेगा नहीं। मेरे प्रेम के पास जाने के लिए।'' सुदर्शना पति और प्रेम के द्वंद्व में फँसी रहती है और फिर शब्दहीन संदेशहीन सुदर्शना चली जा रही है और अपने पूर्व प्रेमी जयराज के पास स्टेशन की ओर। जिसे मन ही मन प्यार करती है। उसके साथ स्टेशन तक जाती है और उसके गोद में सर रखकर सो जाती है। यहाँ भी जैनेन्द्र ने सुदर्शना का प्रेमी के प्रति समर्पण ही दिखाया है। इतना ही नहीं जिस समय सुदर्शना, जयराज की गोद में माथा रखकर सो रही है और जयराज जगकर ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहा है उस समय जैनेन्द्र की इस कहानी का अंश देखिए-

सुदर्शना ने थोड़ी देर बाद धीमे से पूछा, 'क्या बजा होगा? साढ़े बारह तो हो गया होगा।'

'बहुत सर्दी है।'

हाँ बहुत सर्दी है।

कुछ देर हो गयी दोनों चुप रहे। तदन्तर सुदर्शना धीमे स्वर में बोली 'तुम लेट जाओ, मैं कहती हूँ।'

मानों सुदर्शना के भीतर की माता ने यह कहा। (जैनेन्द्र की सर्वश्रेष्ट कहानियाँ, पृष्ठ-91)

यहाँ जैनेन्द्र ने मातृत्व की खोज कर ली है। सतीत्व और मातृत्व के बिना जैनेन्द्र की स्त्रियाँ पूर्ण हो ही नहीं पाती हैं। यहाँ सुदर्शना प्रेमिका है और उसके लिए ऐसा कहना स्वभाविक है, फिर भी जैनेन्द्र की यह कोशिश है। उसके प्रेम को भी मातृत्व की कसौटी पर फिट करना। अब मजे की बात यह है कि सुदर्शना पति का घर छोड़कर प्रेमी के पास आती है और प्रेमी से उसे खास सहारा नहीं मिलता और अपने द्वंद्व में फंसी होने के कारण वह फिर पति के घर लौटने लगती है।

अब अगर 'वेश्या की लड़की' कहानी पर बात की जाए, उसकी इस कहानी की नायिका 'एक रात' कहानी से ज्यादा मुखर है। जिससे प्रेम करती है, उससे ही विवाह करती है। उसके जीवन में समझौता कहीं नहीं है। जीवन खुद के शर्तों पर जीती है, उसे अपने जीवन को खत्म करते समय नहीं लगता।

'वेश्या की लड़की' की नायिका 'छाया' नगर की प्रसिद्ध नर्तकी की इकलौती कन्या है। उसकी माँ मंदिर की प्रधान नर्तकी होती है, मंदिर की प्रधान पुजारी की कृपा है उस पर। जिसके कारण सुख-सुविधा की कोई कमी नहीं है। नगर में उसकी विशाल कोठी थी। मंदिर के अलावा वह कहीं बुलाने पर भी नृत्य करने नहीं जाती।

कहानी का नायक प्रमोद नगर के प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण परिवार का लड़का था। दोनों सहपाठी हैं और प्रेम करते हैं एकदूसरे से। और दोनों ने प्रेमविवाह कर लिया 'कोर्ट मैरिज'। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि जहाँ जैनेन्द्र की स्त्री पात्र खुल कर प्रेम की अभिव्यक्ति भी नहीं कर पाती है और आदर्श सतीत्व और मातृत्व को ढोते हुए ससुराल चली जाती है। वहीं सुभद्रा की स्त्री पात्र 'छाया' जिसे कुलीन घर के लड़कियों के साथ बात तक करने का अधिकार नहीं है। परिवारवालों का

विरोध, तिरस्कार और प्रतारणा न तो प्रमोद को पथ से विचलित कर सका न छाया को। छाया अपनी माँ का घर छोड़कर, सारी सुख-सुविधा को छोड़कर वह प्रमोद के साथ सूखी रोटी खाकर तृप्त है। लेखिका कहती- ''छाया सुख की छाया में बड़ी हुई थी। अपमान, अनादर तिरस्कार के ज्वालामय संसार से परिचित न थी। अब पद-पद पर उसे प्रमोद से प्रेम के स्थान पर तिरस्कार से भरा हुआ अपमान मिलता था। प्रमोद के इस परिवर्तन के बाद भी छाया ने समझ लिया था कि प्रमोद के हृदय में उसने एक ऐसा स्थान बना लिया है जिस तक किसी और की पहुंच नहीं है। उसे इसी में संतोष है।'' (पृष्ठ संख्या 26, सुभद्रा कुमारी की चुनी हुई कहानियाँ)। छाया जो करती है, खुद करती है। उसे अपनी माँ के साथ बदनामी की जिन्दगी पसंद नहीं। प्रमोद के लाख कहने पर कि तुम अपनी माँ के घर लौट जाओ पर छाया नहीं लौटती है। वह कहती हैं- ''मेरी नसों में सीता और सावित्री का महान आदर्श है मेरे साथ.....। उनसे कहना कि मेरी माँ मर चुकी है अगर होती तो मेरे तरह पवित्र जीवन व्यतीत करती।'' अब जरा ध्यान दीजिए - सुदर्शना भी बार-बार पतिव्रता समर्पिता शब्द का प्रयोग करती है। ऐसा जान पड़ता है कि 'पतिव्रता' शब्द दोनों ही कहानियों की नायिकाओं पर हावी है। पर ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि जहाँ सुदर्शना शादी के कई वर्षों बाद भी पतिव्रता नहीं हो जाती है 'एक रात' प्रेमी के साथ रहती है। उसके सामने समर्पण करने के बाद भी वह उसके साथ नहीं रहती। वहाँ से लौटती है फिर पति के घर ही जहाँ से मुहमोड़ कर चली गयी थी। वहीं दूसरी ओर छाया सीता और सावित्री का आदर्श लेकर जीवन जी रही है। पर 'छाया' को आज की स्त्री की तरह पति का किसी दूसरी औरत के साथ हेलमेल बर्दास्त नहीं। वह जिस पति के लिए सीता बनकर सारा दुःख, अपमान झेलती है पर प्रतिशोध की आग ऐसी है कि वह माँफी माँगने का भी मौका नहीं देती। जिन्दगी जीती है तो अपने शर्तों पर चाहे जितना उसे दुःख सहना पड़े, वह हारती नहीं है। मौत को गले लगाना उसे मंजूर है पर पीछे मुड़ कर जाना नहीं। प्रमोद घर लौटकर देखता है- ''छाया अपने जीवन की अंतिम सांसें ले रही थी। उसकी आंखे कदाचित् एक बार प्रमोद को देख लेने की प्रतीक्षा में खुली थीं। प्रमोद के आते ही एक हिचकी के साथ उसकी आँखे सदा के लिए बंद हो गई। प्रमोद पागलों की तरह छाया की लाश पर गिर पड़े।'' सीता की तरह छाया भी मौत को ऐसे गले लगाती है कि प्रमोद एक बार माफी भी नहीं माँग पाता। यह आधुनिक नारी का प्रतिशोध है। वह अपने प्रेमी, पति को बाँटना नहीं चाहती। उसे मर्द के पैरों की जूती बनना पसंद नहीं। वह स्वतंत्र रूप से प्रेम करती भी है और चाहती भी है। जीवन अपने बनाए शर्तों पर जीती है। चाहे उसे मृत्यु को ही गले क्यों न लगाना पड़े।

अब निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि जैनेन्द्र 'स्त्री-पीड़ा' को काफी 'बोल्ड' तरीके से प्रस्तुत करने के बाद भी उसका गाँधीवादी समाधान सुझाते हैं। जैनेन्द्र 'स्त्री-मुक्ति' की औषधि गांधीवादी औषधालय में खोजते नजर आते हैं। जिन्हें आज का स्त्री-विमर्श स्वीकार नहीं करने की स्थिति में है। जैनेन्द्र की स्त्री 'राधा' की तरह कृशकाय होकर कृष्ण की बाट जोहती नजर आती है। यही कारण है कि सुदर्शना न पति की होकर रह पाती है न प्रेमी की। वहीं सुभद्रा की स्त्री-पात्रों पर गांधी दर्शन का प्रभाव रहते हुए वह समझौते की जिन्दगी जीना नहीं चाहती। उसकी स्थिति जिन्दगी और मौत के आरपार चलती है। सुभद्रा की स्त्री पात्र 'छाया' स्त्री-विमर्श के मानदंडों पर खरी उतरती है। जीवन के सभी फैसले उसके अपने हैं। उसके शरीर पर, उसके जीवन पर उसका अधिकार है। उसके प्रेमी या पति का नहीं। वह जरूरत पर सीता और सावित्री की तरह पतिव्रता का व्रत निभाती है वहीं अपमान, तिस्कार और धोखा पाने पर प्रतिशोध भी करती है, और प्रतिशोध भी कैसा? जो सोचने-समझने के लिए भी समय न दे। वह बदला लेती है अपने पति से उसे अकेला तड़पता छोड़कर मौत को गले लगाना आज से अस्सी वर्ष पूर्व बहुत साहस का काम है। सहानुभूति और स्वानुभूति का यहीं अन्तर है। मीरा की पंक्ति का यहाँ याद आना स्वभाविक ही प्रतीत होता है- ''घायल की गति घायल ही जाने और न जाने कोय।''

****

भारतीय समाज के आइने में बदलती नारी की छवि

डॉ. पूजा गुप्ता

'शोचन्ति जामयो यत्र, विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता, वर्धते तद्धि सर्वदा॥'

अर्थात् जिस स्थान पर नारी का अपमान होता है, वहाँ विनाश होना निश्चित है, और जहाँ उसका सम्मान होता है, वहाँ सदा उन्नति होती है।

सचमुच, समाज को विनाश अथवा प्रगति के पथ पर मोड़ने वाली नारी ही है। किसी भी राष्ट्र का सबसे जीवंत अंग समाज है। समाज की कार्यशील इकाई परिवार है और परिवार की केन्द्रीय धुरी है - नारी। वास्तव में नारी समस्त राष्ट्र की और मानवता की आधारशिला है। समाज-रूपी चक्र को गतिशील रखने में नारी का विशेष महत्व है।

नारी विधाता की सबसे सुन्दर रचना है। नारी के बिना सृष्टि का कोई आधार नहीं है। वह पवित्रता, कोमलता, मधुरता, प्रेम, वात्सल्य आदि दिव्य गुणों की प्रतिमा है। प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद के शब्दों में -

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'

न कोई स्वार्थ, न कोई छल; नारी समाज के प्रति अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहती है। नारी का मन यही कहता है-

दया माया ममता लो आज
मधुरिमा लो अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्ननिधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।

परन्तु नारी की छवि ने भारतीय समाज में कई रूप बदले हैं। आधुनिक नारी की व्यक्तित्व को जानने व पहचानने के लिए हमें पूर्व इतिहास पर दृष्टि डालनी होगी।

भारत में वैदिक काल में स्त्रियों को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता था। उन्हें समाज में वही स्थान प्राप्त था, जो पुरुषों को था। उन्हें भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और वे भी वेदाध्ययन करती थीं। कहीं-कहीं सह-शिक्षा का भी प्रचलन था।

महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश के साथ आत्रेयी के भी शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है। यह भी उल्लेख मिलता है कि उन्हें भी 25 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। वैदिक काल में नारियों का कार्य-क्षेत्र घर से बाहर भी था। इसका प्रमाण मिलता है कि वैदिक साहित्य में नारी को

* *सहायक प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, रामजस महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)।*

अध्यापिका, उपाध्याया, आचार्या, ऋषि, मुनि आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। सीता, द्रोपदी, मंदोदरी, भारती, अहिल्या, अनुसूया आदि ऐसी महिलाएँ प्राचीन काल में हुईं, जिन्हें पुरुष की तुलना में किसी भी प्रकार से कम नहीं समझा जा सकता।

सामान्यतौर पर नारी की स्थिति परिवार की गतिविधियों तक ही सीमित रहती थी, जबकि पुरुष का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तृत था। जिस तरह आधुनिक नारी व्यक्तित्व की स्वतंत्रता, स्वावलंबन, शिक्षा और परिणामतः प्रगति की ओर अग्रसर हुई है, वैसा शायद पहले इतिहास में कभी नहीं हुआ।

कहते हैं, रामायण और महाभारत के युग के बाद नारी की स्थिति खराब होती चली गई और उसकी प्रतिष्ठा क्षीण होने लगी। जिस नारी को, इन पंक्तियों से सम्बोधित किया जाता था-

अर्ध सत्य तुम, अर्ध स्वप्न तुम, अर्ध निराशा आशा,
अर्ध अजित-जित, अर्ध तृप्ति तुम, अर्ध अतृप्ति पिपासा;
आधी काया आग तुम्हारी, आधी काया पानी,
अर्धांगिनी नारी! तुम जीवन की आधी परिभाषा।

उसी नारी को नरक के द्वार की संज्ञा दी गई-

'नारी नरकस्य द्वारम्'

शंकराचार्य, कबीर और तुलसीदास जैसे बड़े विद्वानों ने भी नारी की महानता पर प्रश्नचिन्ह अंकित किए। इन लोगों ने नारी को साधना के पथ में बाधा माना। नारी को सर्जनात्मक शक्ति को विध्वंसात्मक शक्ति मान लिया गया। स्त्री-निन्दकों द्वारा नारी को पाप की खान तथा भुजंगिनी के समान भी कहा गया।

'ढ़ोल गंवार शूद्र पशु नारी
ये सब ताड़न के अधिकारी'

कहकर यह साफ जाहिर कर दिया कि नारी और पशु में कोई अंतर नहीं। यहाँ तक कि नारियों को पशु समान खरीदा व बेचा भी गया। सम्भ्रान्त परिवारों में स्त्रियों को पशु-संपत्ति की तरह संग्रह की वस्तु समझा गया और पण्डितों ने उसे जाति की दृष्टि से शूद्र का दर्जा दिया।

पिछले हजारों वर्षों से पुरुष नारी का शोषण करता रहा है। मध्य युग में नारी को विलासिता का साधन माना जाता था। पुरुष उसे अपने शयनकक्ष का शृंगार मानता था। स्त्री पुरुष की सेविका, भोग्या और अंततः चूल्हा-चौका और बच्चों की परवरिश करने वाली गृहिणी बनकर रह गई। घर की चारदीवारी में कैद होकर नारी को जन्म से मृत्यु तक घुटना पड़ता था। स्त्री की आशा व आकांक्षाओं की पुरुष के लिए कोई महत्ता नहीं थी। उसे शिक्षा के अधिकार से भी वंचित कर दिया गया था। उसे घर की लक्ष्मण रेखा को पार करने की अनुमति नहीं थी।

परन्तु आधुनिक युग में जब हर चीज एक नवीन रूप धारण कर रही है तो नारी का प्रारूप भी उससे कैसे अछूता रह सकता था? आज के समाज में नारी के सम्बन्ध में भी एक आधुनिक दृष्टिकोण बना है। आधुनिक अर्थात् नए समय के अनुसार, बदलते परिवेश के अनुकुल। आज नारी की स्थिति भी समय के अनुसार बदल रही है, यही उसकी आधुनिकता है।

नारी की पूर्ण स्वायत्तता का आंदोलन लगभग एक शताब्दी पुराना है। भारत में राजा राममोहन राय के प्रादुर्भाव के साथ ही नारी जागरण का संदेश फैलना शुरू हो गया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे व्यक्तियों ने नारी को समाज में उचित स्थान दिलाने की दिशा में अनेक प्रयत्न किए। फलस्वरूप, नारी से सम्बन्धित अनेक कुप्रथाओं जैसे सती-प्रथा, बाल-विवाह, आदि का अंत हो गया।

नारी की आधुनिकता का प्रादुर्भाव व्यक्तित्व में क्रांति उत्पन्न होने से आया है। इसके साथ ही नारी की आधुनिकता का सम्बन्ध परिवार एवं समाज में उसके स्थान और दायित्व से है। आधुनिक युग में नारी ने अपनी महत्ता को पहचाना। उसने दासता के बन्धनों को तोड़ दिया और स्वतंत्र व्यक्तित्व को अपनाया। आधुनिक नारी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ स्वावलंबन का भी पाठ पढ़ा। उसने शिक्षा, राजनीति, व्यवसाय आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र में वह पुरुषों से कुई कदम आगे निकल चुकी है। वह कला विषयों के साथ-साथ, वाणिज्य और विज्ञान विषयों में भी सफलतापूर्वक शिक्षा ग्रहण कर रही है। नारी प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करने के लिए दृढ़ संकल्प है। आधुनिक नारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि काम चाहे एक्जीक्यूटिव ऑफिसर का हो या विमान चालक का, स्त्रियाँ उसे सम्पन्न कर सकती हैं। वे सिर्फ ममतामयी जननी और घर का कामकाज देखने वाली गृहिणी मात्र नहीं रह गई हैं।

आधुनिक नारी प्राचीन अंधविश्वासों की बेड़ियों से मुक्त हो गई है। वह भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को अधिक महत्व देती है।

आधुनिकता की आड़ में कुछ नारियाँ स्वतंत्रता और स्वावलंबन के साथ-साथ अभिमान को अपना लेती हैं और नारीत्व को लज्जित कर बैठती हैं। वे स्वयं को पुरुषों से अधिक प्रगतिशील करने की होड़ में नारी व्यक्तित्व की परिभाषा ही बदल देती हैं। उनके लिए नारी-मुक्ति का अर्थ पुरुषों के खिलाफ आंदोलन और अपनी मनमानी चलाना होता है। वे मुक्त होने के क्रम में अपने नारीत्व को खो देती हैं।

ऐसी स्त्रियों को नारी-मुक्ति के नाम पर पुरुषों की नकल या उनके प्रति आंदोलन नहीं करना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि उनका गौरव इसी बात में है कि वे स्त्रियोचित गुणों से युक्त रहें। ममता, मातृत्व, कोमलता, सुन्दरता, सहजता आदि से युक्त रहकर नारी अपने व्यक्तित्व को आसानी से विकसित कर सकती है।

'आधुनिकता' का यह रूप सतही एवं सीमित है। आधुनिकता का वास्तविक मानदंड इस अपवाद से नहीं अपितु नारी की नई चेतना, आत्मनिर्भरता और अंध-रूढ़ियों से मुक्ति है। अपने अधिकारों व अपनी शक्ति को पहचानने से है। साधारण हस्तशिल्प से लेकर इंजीनियरी तक आज नारी जागरूकता से अपनी योग्यता प्रदर्शित कर रही है। राजनीतिक दृष्टि से भी विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय होकर आधुनिक नारी ने समाज और देश की प्रगति में योगदान दिया है। आज के लोकतंत्र, अर्थतंत्र और समाजतंत्र में नारी की जीवन्त भूमिका साफ नजर आ रही है। यह उसकी आधुनिक दृष्टि का ही परिणाम है।

तात्पर्य यह है कि प्रगति और शिक्षा आदि के क्षेत्र में तो नारी को पूर्ण आधुनिक बनना चाहिए, नए विचारों, नई चेतना को आत्मसात करना चाहिए, किन्तु नाशकारी और समाज-विरोधी आधुनिकता का अन्धानुकरण उचित नहीं।

****

बालिका शिक्षा : चिंतन अनुचिंतन

सुश्री रेखा चुडासमा*

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में छात्र-छात्राओं की शिक्षा एवं पाठ्यक्रमों में समानता होने से बालिकाओं में नैसर्गिक, मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक स्त्रियोचित गुणों का विकास नहीं हो पाता है। आज की बालिका भविष्य की नारी है। वह परिवार, समाज और देश का नेतृत्व अपने व्यक्तित्व से कर सके, इस प्रकार के पाठ्यक्रमों की उसे आवश्यकता है। पारिवारिक भावना, पारिवारिक जीवन और परिवार-व्यवस्था का मुख्य आधार गृहिणी है। आज के संदर्भ में परिवार के प्रति दृष्टिकोण बदल गया है। संस्कार-परंपरा, कुल-परंपरा एवं संस्कृति-परंपरा परिवार के माध्यम से ही हस्तांतरित होती है, इसमें महिला का ही महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

स्त्री-पुरुष समानता, स्त्री-मुक्ति, स्त्री-सशक्तीकरण आदि शब्दों की अवधारणा से बालिका-विकास के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव हुआ है। सिर्फ कैरियर आधारित, अर्थ केन्द्रित शिक्षा से भारतीय नारी के वास्तविक तथा श्रद्धास्पद स्वरूप का बोध होने में बाधा आ रही है। जीवन की चुनौतियों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी सुरक्षा करने की क्षमता का विकास करने की व्यवस्था आज कम ही दिखाई देती है। परिवार के प्रति बालिका का कर्तव्यबोध कम होता दिख रहा है।

भारत के इतिहास की प्रेरक महिलाओं का परिचय एवं प्रेरणा, धर्म एवं संस्कृति का सही ज्ञान देने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रमों में अभाव दिख रहा है। जो वर्तमान समय में बालिका को विशेष शिक्षा के माध्यम से दी जानी चाहिए। वर्तमान भारत को वैचारिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से मजबूत बनाये, ऐसी शिक्षा की आज आवश्यकता है।

शिक्षाविदों के विचार बालिका शिक्षा के परिपेक्ष्य में

भारतीय शिक्षाविद् श्री लज्जाराम तोमर का कथन है ''हमें यह सत्य स्वीकार करना होगा कि विज्ञान और समाज चाहे जितने उन्नत हो जायें और सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों और पुरुषों के व्यवहार क्षेत्र तथा कार्यक्षेत्र में चाहे जितनी समानता आ जाए, किंतु पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति के साधनों में अवश्य अंतर रहेगा। यह अंतर कुछ तो उनकी नैसर्गिक भिन्नता के कारण और कुछ उनकी शारीरिक भिन्नता के कारण आवश्यक है। सामाजिक समानता का अर्थ यह नहीं है कि पुरुष और स्त्री दोनों की प्रकृति एक हो जाए। यह संभव नहीं।''

स्त्री की प्रकृतिजन्य विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनके विकास की सुव्यवस्था शिक्षा क्षेत्र में अलग से करना परमावश्यक है। एक स्त्री को माता, गृहिणी, पुत्री, भगिनी, पत्नी आदि सभी संबंधों का निर्वाह परिवार में करना होता है। इसलिये स्त्रियों की मूलभूत मनोवैज्ञानिक और भावात्मक विशेषताओं, सौंदर्यात्मक वृत्ति, मातृत्वभाव एवं गृहिणी के रूप में उसके उत्तरदायित्व आदि का ध्यान रखते हुए उसकी शक्तियों के विकास के अनुकूल उनकी शिक्षा के पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए।

स्त्री स्वरूप, राष्ट्रहित समर्पित गृहिणी, माँ, श्रेष्ठ नागरिक की भूमिका निभाने वाली स्त्री का निर्माण करने वाले पाठ्यक्रम के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत होती है।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने विभिन्न पाठ्यक्रमों की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था - ''प्रकृति और ईश्वर ने मानवजाति को स्थिर बनाये रखने का भार स्त्री पर रखा है और मनुष्य का सृजन पुरुष नहीं अपितु स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। इस गौरवपूर्ण तथा विशिष्ट दायित्व को स्त्रियों और समाज के समक्ष लाना चाहिये और चाहे जो भी शिक्षा पद्धति हो, उसमें इसकी गरिमा या अनिवार्यता को ध्यान में रखना चाहिए।''

* *बालिका शिक्षा, संयोजिका, विद्याभारती, जबलपुर*

कोठारी आयोग ने कहा है ''शिक्षा के द्वारा ही बालिकाओं में सामाजिक, राष्ट्रीय भाव का निर्माण करना है। नैतिक आध्यात्मिक भाव संतुष्ट करना, सहनशील, सार्वजनिक हित का ध्यान, स्वशासन, आत्म साक्षात्कार, नेतृत्वशक्ति का विकास, वैज्ञानिक मस्तिष्क का विकास, सामाजिक कुप्रथाओं का प्रतिकार करने की क्षमता का निर्माण करना है।''

महात्मा गाँधी जी ने सत्य शिक्षा में लिखा है ''जग के आधार रूप में पुरुष एवं स्त्री समान है।'' यह भी बिल्कुल सत्य है कि ''शारीरिक बनावट में दोनों में महान भेद है। पुरुषों एवं स्त्रियों की शिक्षा में उसी प्रकार का अंतर किया जाना आवश्यक है जैसा कि स्वयं प्रकृति ने उनसे किया है।''

महात्मा गाँधी जी का शिक्षा चिंतन है ''प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर तो बालिकाओं के लिए वही पाठ्यक्रम हो सकता है, जो बालकों के लिये हो, परंतु माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक, उच्च शिक्षा के स्तरों पर उनमें स्त्रियों के कार्यक्षेत्र की दृष्टि से आवश्यक परिवर्तन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा से दीक्षित कन्या अपने परिवार, समाज तथा देश के सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने में उपयोगी सिद्ध होगी।''

हमारे देश में बालिकायें अपनी माँ, दादी, नानी, बुआ से परिवार भावना, परिवार व्यवस्था, सामाजिक नीति-रीति, गृह प्रबंधन, मनोविज्ञान, भारतीय तत्वज्ञान तथा विविध कला कौशल घर में ही अनुकरण करके सीखती थी। वर्तमान समय की परिस्थितियों और परिवार व्यवस्था में परिवर्तन होने से विद्यालय-परिवार को बालिका शिक्षा पाठ्यक्रमों के क्रियान्वयन का संकल्प करना होगा। बालिका शिक्षा के आयाम को महत्व देकर सामाजिक प्रयोगों को परिवार शिक्षा एवं समाज प्रबोधन की दृष्टि लानी होगी।'' विद्यालय को ही बालिका शिक्षा का केन्द्र बनाना होगा जो पहले परिवार में था।

उपर्युक्त शिक्षाविदों के कथन से बालिका शिक्षा का महत्व स्पष्ट होता है। इसलिए नैसर्गिक गुणों से युक्त बालिका की विशेष शिक्षा का विचार विद्याभारती ने किया है। विद्यालयों में विषय शिक्षण के साथ सह-पाठ्य क्रियाकलापों के माध्यम से पाठ्येतर क्रियाकलाप से एवं नैमित्तिक, प्रासंगिक कार्यक्रमों के माध्यम से और परिवार में किए जाने वाले क्रियाकलाप, बालिका शिक्षा का क्रियान्वयन विद्याभारती के बालिका विद्यालयों एवं सह-शिक्षा विद्यालयों में किया जा रहा है। बालिका शिक्षा में परिवार के साथ संवाद, परिवार प्रबोधन एवं समाज जागरण के विषयों पर विचारगोष्ठी एवं चिंतन होता है।

इस दृष्टि से बालिका को निम्नलिखित कार्य सीखने की आवश्यकता है।

(क) घर के छोटे मोटे काम

कुछ काम ऐसे होते हैं जो घर में किये जाते हैं और करने ही चाहिए। इन कामों की सूची इस प्रकार है -

1. घर की स्वच्छता करना, व्यवस्था करना।
2. कपड़े धोना, बर्तन साफ करना।
3. भोजन पकाना और परोसना।
4. देव पूजा, अतिथि सत्कार एवं अन्य कुलाचार एवं कुल धर्मों का पालन करना।
5. घर सजाना। घर का संस्कारक्षम वातावरण निर्माण करना।
6. बड़ों की, रुग्णों की, बच्चों की, अतिथियों की परिचर्या करना।
7. शिशु संगोपन एवं शिशु संस्कार करना।
8. गृहस्थाश्रम के सारे सामाजिक कर्तव्य समझना।

(ख) परिवार भावना, परिवार जीवन एवं परिवार व्यवस्था

1. परिवार की केन्द्र बिन्दु माँ एवं गृहिणी के उत्तरदायित्व को समझना।

2. परिवार में समन्वय, समायोजन और सबके साथ मातृवत् व्यवहार सीखना।
3. परिवार का महत्व समझना।
4. परिवार परंपरा को नई पीढ़ी को हस्तांतरित करने की प्रक्रिया समझना।
5. परिवार की जीवनशैली में भारतीयता का वैज्ञानिक दृष्टिकोण सीखना।

(ग) संस्कृति के संस्कार

1. जीवन का लक्ष्य निर्धारित करना।
2. शिष्ट और सुसंस्कृत पद्धति से व्यवहार करना।
3. संयम, अनुशासन, परिश्रम, आज्ञापालन, सेवा के भाव।
4. उत्सव पर्व मनाने की सांस्कृतिक पद्धतियाँ।
5. अपने कुल का गौरव बढ़ाने का भाव।
6. कुल परंपरा को आगे बढ़ाने के सिद्धांत।
7. घर के सभी सदस्यों को एक सूत्र मे पिरोना और उन्हें अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिये प्रेरित करना।
8. सभी के प्रति मातृवत् व्यवहार करना।
9. नारी देह में जन्म के गौरव का भाव होना।

(घ) विभिन्न व्यावहारिक कौशल

घर समाज की इकाई है। इस दृष्टि से घर के कुछ सामाजिक दायित्व होते हैं। ये दायित्व भी गृहिणी को निभाना आना चाहिए।

1. घर में जो आय होती है, घर चलाने के लिये उसका किस प्रकार व्यय करना इसे हम कहेंगे ''व्ययशास्त्र'' सीखना।
2. जितनी आय है उससे व्यय हमेशा कम रहे यह पहला नियम है। दूसरा कर्तव्य है हमें आय और कम व्यय से जो कम सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, वह परिवार में दुःख और क्लेश का कारण न बने, यह देखना। तीसरा है धन और पदार्थो की विपुलता से ही नहीं अपितु प्रेम और सौहार्द्र की भावना से सुख मिलता है इस संस्कार को दृढ़ करना।
3. अपनी कमाई से अनिवार्य रूप से दान करना चाहिए। यह बात घर के सभी सदस्यों को समझाना चाहिए।
4. किस बात पर कितना खर्च करना, खर्च की दृष्टि से प्राथमिकताएँ तय करना, कुशलतापूर्वक खरीदी कौशल सीखने की आवश्यकता होती है।
5. व्यय कम हो इस दृष्टि से योजना करना और आय अधिक हो इस दृष्टि से छोटे-मोटे उत्पादक उद्योग सीखना चाहिए।
6. धन कितना आवश्यक है और धन से अधिक आवश्यक कौन-कौन सी वस्तुएं हैं, यह सीखना चाहिए।

बालिका शिक्षा में कार्यक्रम एवं योजनाएँ

1. बालिका व्यक्तित्व विकास शिविर।
2. किशोरी परामर्श एवं प्रशिक्षण।
3. ''कन्याभारती'' की संगठनात्मक रचना।
4. किशोरावस्था में परिवर्तन एवं व्यवहार-प्रबोधन एवं परामर्श।
5. बालिका शिक्षा संबंधित विषयों की विभिन्न परिषदों की रचना करना, कार्यशाला।
6. माता-पुत्री विचार गोष्ठी के माध्यम से चर्चा/वार्ता, जिज्ञासा समाधान।
7. परिवार के विभिन्न विषयों पर प्रबोधन/गोष्ठी।

****

NEWS ANALYSIS

By Prarthana Judith Herald

RESPECT YOUR ELDERS

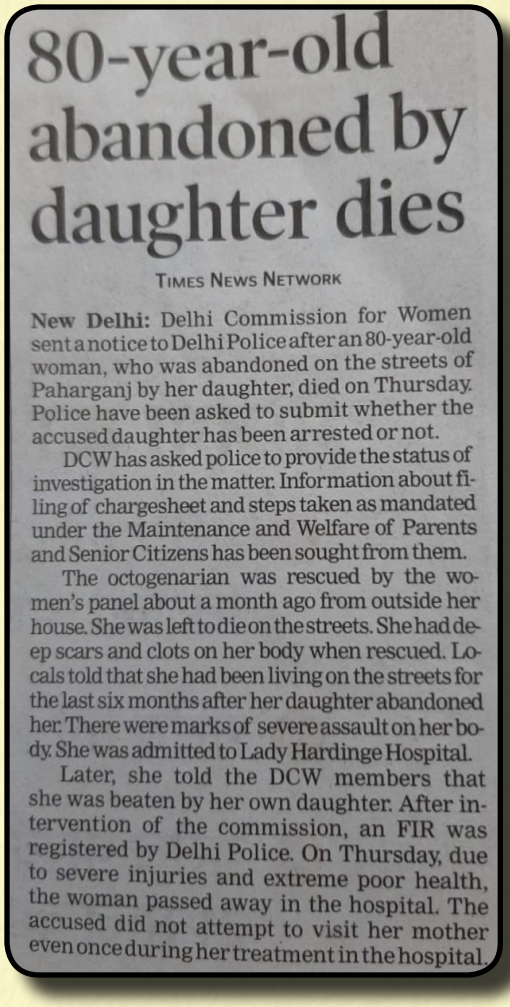

80-year-old abandoned by daughter dies

TIMES NEWS NETWORK

New Delhi: Delhi Commission for Women sent a notice to Delhi Police after an 80-year-old woman, who was abandoned on the streets of Paharganj by her daughter, died on Thursday. Police have been asked to submit whether the accused daughter has been arrested or not.

DCW has asked police to provide the status of investigation in the matter. Information about filing of chargesheet and steps taken as mandated under the Maintenance and Welfare of Parents and Senior Citizens has been sought from them.

The octogenarian was rescued by the women's panel about a month ago from outside her house. She was left to die on the streets. She had deep scars and clots on her body when rescued. Locals told that she had been living on the streets for the last six months after her daughter abandoned her. There were marks of severe assault on her body. She was admitted to Lady Hardinge Hospital.

Later, she told the DCW members that she was beaten by her own daughter. After intervention of the commission, an FIR was registered by Delhi Police. On Thursday, due to severe injuries and extreme poor health, the woman passed away in the hospital. The accused did not attempt to visit her mother even once during her treatment in the hospital.

"Respect your elders learn from the people who have walked the path before you ....respect them because Someday and sooner than you could ever imagine you're going to be old too..." **- Anonymous**

These lines are so very true for a society in which we live today. The real dilemma lies in the fact that an individual like you or me can do nothing for those aged parents who are there lying in the old age homes and many a times these old people are mistreated and ill-treated by the administration of these homes. As an individual I can narrate my own journey of how I visited an old age home and witnessing the harsh reality of that place made me feel miserable. It brought out the sordid reality of how the old in India are living every day. In my interview with one of the gentlemen there Mr. X (to retain the anonymity of the individual) I got to know that he was cheated by his own sons and daughters who took him on the pretext of a drive in the city at night and dropped him with his luggage outside the old age home. It must have been a bolt from the blue! Mr. X in spite of being a graduate in chemistry was thrown into an old age home when his children got to know that he was suffering from a heart disease.

What was really appalling and distressing was that while interviewing these old people, I got to know that they were not even allowed to switch on the fans here in the month of July when I visited them. It is indeed a dolorous tale of atrocity. After visiting the old age home, I have had an experience of my life that I would never forget till my last breath. A deeper sense of respect and gratitude for the elderly has been embedded in my heart. With teary eyes as I was interviewing them, I heard story after story of neglect and how the children whom these parents cared for Once Upon A Time have now abandoned them. If I can describe such a situation, I would certainly call it nothing short of a heinous crime both at the part of the children who abandoned their parents and the administration of the old age home. I can definitely speak about these two homes that I visited in the month of July 2017 however at the same time I cannot generalize the condition of the other homes that are located all over India.

After knowing the grim actualities of life in the old age homes. Mr. X's words were - " it's like a prison for me I want to get out please help me", these words left an indelible mark on my heart, I was helpless, I could not do anything but till today I remember his helpless face. Another narrated -" we are given the same Khichdi chawal everyday" then I heard still another saying that "we are forced to carry big buckets of washed linen to the terrace". It was pathetic to know that even in this old age there is no rest granted to the residents of the old age homes. Oh, I wish I could help them as a student. Yes, when I did talk to them, they were very happy and cheerful, they lack company, they want someone to talk to them they are all alone but who will listen to them, nobody is patient enough. It gives me a heartache and I am sure that you must be restless too after reading this painful ordeal. It is true that life becomes a burden when your loved ones are not around you and when they think of you as a burden to them I am astonished to find out that there are children who do not respect their parents and treat them as if they never existed!

A few days back there was another article in the newspaper of how an 80 year old woman was abandoned on the streets of Paharganj thrown and beaten by her daughter. Stories like this really make you feel worse isn't it? I would say such stories and experiences are an epiphany of cold hearted and inconsiderate human beings who are like zombies who don't feel pain and hurt in spite of having a heart. It is thus important to understand the nuances of human life, that one does not stay active and young every time, it is the fact of life that one will turn old one day and therefore life is a vicious cycle one should never forget that one would reap whatever he or she sows and that would be very harsh. There is a minute and subtle difference in living for oneself and in living for others what would you opt for? It is ultimately your decision, it is your choice, therefore discern wisely. It is important to care for your elders. I hope that you as a reader would choose to make a difference in the life of your elders and become a great change in the society one day so that together we will be able to carve a niche in society where everyone would be able to live a decent and healthy life without the fear of being abandoned, - to relinquish selfishness and embrace selflessness.

SKETCHES

By Simran Tyagi

Based on Articles in June 2020 Issue

ISSN 2581-9917

The Feminine 'Nature' in the Indian Texts and Tradition

ISSN 2581-9917

रोपण

"You have the wings. Fly high and fly strong"

--Dr. Prerna Das
New Oregon, USA

ICC Maitreyi College

Bapu Dham Complex, Chanakaya Puri, New Delhi-110021
Phone No. 011-24673815 | Mobile No. 9818015570
e-mail : pbagla@maitreyi.du.ac.in

Magazine Design by : Mr. Santosh Kumar, 9810247681